

श्रीमधुसूदनग्रन्थमालायां तृतीयस्तवके प्रथमं प्रसूनम्

जयपुरराजकीयपण्डितसभाप्रमुखेन वेदरहस्योद्धाटनप्रवरेण
महामहोपदेशकसमीक्षाचक्रवर्तिश्रीमन्मधुसूदनविद्यावाचस्पतिना
मैथिलेन प्रणीता शतसूत्री

देवतानिवित्

त्रिकाण्डे ब्रह्मविज्ञानशास्त्रे वैज्ञानिकवेदरहस्यप्रकाशके
तृतीयकाण्डसम्बन्धिग्रन्थानामयमन्यतमो ग्रन्थः

श्रीमदाद्यादत्तठक्कुरेण सम्पाद्य प्रकाशिता

प्राथमिक संचित वक्तव्य ।

पूर्वकाल से अद्यावधि वेद में विद्वन्मण्डली की पूर्ण श्रद्धा और आदर है । किन्तु आदर के कारण भिन्न-भिन्न दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार के माने जाते हैं । वैदेशिक जनता इसको प्राथमिक सभ्य समाज का सबसे पुरातन ग्रन्थ होने के कारण आदर करती है । किन्तु भारतीय जनता अपने सर्वस्वभूत धर्म का मौलिक विज्ञान भी इसमें मानती है और इसे स्वर्गीय ग्रन्थ समझती है । वास्तव में ही यह स्वर्गीय ग्रन्थ है, विज्ञान का भण्डार है, किन्तु खेद का विषय है कि इसमें पूर्ण श्रद्धा भक्ति रखते हुए भी यह स्वर्गीय ग्रन्थ किस कारण से है इसमें विज्ञान किस प्रकार के हैं इन बातों के उपपादन करने में प्रायः सभी असमर्थ देखे जाते हैं, वेद के वास्तविक रहस्य जानने में सभी कुण्ठित हैं । इसका कारण यही है कि वेदार्थ ज्ञान साधन के बहुत से उपयोगी ग्रन्थ मध्यकालिक आसुर विस्रवद्वारा नष्ट हो गए, और वेदों की पठनपाठनपरिपाटी भी क्रमशः नष्ट हो गई । जिससे वेद के बहुत से पदार्थ अज्ञात हो गए । प्राचीन काल के व्यवहारोपयोगी कितने ही शब्दों के अर्थ भी उन व्यवहारों के नष्ट होने से विस्मृत हो गए । व्याकरण के धातुप्रत्यय द्वारा उन रूढ़ शब्दों के अर्थ के अनर्थ किए जा रहे हैं—जैसे अरण शब्द जो असंबन्धी अपरिचित गौर व्यक्ति का वाचक है, उसका 'अभाषण' 'असं-

‘वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः,’ ‘ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽये-
तव्यः’ इत्यादिषु सत्स्वपि परःसहस्रेषु वेदाध्ययनविधायकेषु स्मृतिवाक्येषु भारतवर्षेऽ-
धुना वेदानां पठनपाठनप्रचारस्वतीवविरलः । उपनयनसंस्कारकाले गायत्रीमन्त्रोपदेश-
मात्रेण वेदाध्ययनस्येतिकर्तव्यतां मन्यमानाः साम्प्रतिका द्विजपुङ्गवाः परिदृश्यन्ते ।
ये केचित् साम्प्रतं वैदिकसंज्ञाभाजो दृश्यन्तेऽपि कुत्रचित् वेदाभ्यासशीलिनः द्विज-
वरास्तेपि संहितापारायणे एव कृतश्रमाः न प्रायेण तदर्थवबोधक्षमाः । एवं भारतीयानां
परमो निधिरयं वेदः दुरुहोऽपि सुतरां दुरुहतरः संवृत्तः । ये च केचिन्महाशया वैदिक-
साहित्यगौरवाकृष्टमनसस्तद्भ्यासे यतितुमीहन्ते तेऽपि सामग्र्यभावान्मार्गं एवावसी-
दन्ति । महीतीमिमां दुरवस्थामाकलय्य जयपुरराजसभाप्रधानपण्डितैः सकलविद्वन्मंड-
लमूर्धन्यैर्विद्यावाचस्पतिश्रीमन्मधुसूदनभा शर्म्ममहानुभावैः वैदिक साहित्यप्रविवि-
क्षूणां सौकर्याय परिभाषाप्रकाशरूपोऽयं ग्रन्थो निरमायि । अस्य सम्यगध्ययनेन
वेदार्थजिघृक्षवः पारिभाषिकान् शब्दान् समधिगत्य सुखं वेदवाक्यानां तात्पर्यमुन्नेतुं
पारयिष्यन्तीत्यत्र सुधिय एव प्रमाणम् ।

श्रीमद्विद्यावाचस्पतिमहोदयैरन्येऽपि बहवो ग्रन्था उपनिबद्धास्तेषु कतिपये
मुद्रिताः सहृदयपाठकानां दृष्टिपथमागता एव । इन्द्रविजयाभिधस्वेको वैदिकसभ्यता-
सूचको ग्रन्थः मुद्रायन्त्रस्थः शीघ्रमेव प्रकाशयिष्यते । एतस्मिन् ग्रन्थरत्ने बहवो
विवादास्पदीभूता विषया विविधाभिर्युक्तिभिरनेकविधवैदिकपौराणिकप्रमाणजातैश्च
सुविशदं निरूपिताः । भारतवर्षीयभूगोलविषये चाद्यतनीया मिथ्या धारणा सप्रमाणं
निरस्ता । लङ्कायाः स्थितिसम्बन्धेऽपि साम्प्रतं विद्वत्समाजेषु बह्व्यो विप्रतिपत्तयो
दृश्यन्ते । केचिस्सिंहलमेव लङ्कात्वेनावगच्छन्ति अन्ये पुनः प्रकटितनिजप्रज्ञापाटवम-
हिमानोऽमरकण्टकाभिधानपर्वते नर्मदाया उद्गमस्थानसमीप एव लङ्कायाः स्थितिं
प्रतिपादयन्ति । एषा लङ्कानगरी सिंहलद्वीपादपि दक्षिणे निरक्षदेशे आसीत् इति
बहुभिः प्रमाणैः सम्यक् प्रतिपादितमस्मिन् ग्रन्थे । यदवलोकनेन सुतरां शाम्यत्येवै-
तद्विषयको विवादः । अन्ये च बहवो ज्ञातव्यविषयाः स्वयमेवास्वादयिष्यन्ते
‘नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते’ इति दिक् ।

श्रीआद्यादत्तष्टकुरः ।

से एक बहुत छोटा सा ग्रन्थ जिसका नाम 'देवता निवित्' है निरीक्षण के हेतु आपको अर्पण किया जाता है। इसमें देवता संबंधी एक शत विषयों की परिभाषाएँ पृथक्-पृथक् निर्दिष्ट हैं। और भी कितने ही ग्रन्थों में इसी प्रकार परिभाषाएँ दिखाई गई हैं। इनके द्वारा वैदिक विज्ञान के रहस्यों की जानकारी में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। चालीस ग्रन्थों में से वे ग्रन्थ जिनमें इसी प्रकार से परिभाषाएँ निर्दिष्ट हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—भूतनिवित्, ऋषिरहस्य, आत्मारहस्य, ब्राह्मणहृदय, उपनिषद्हृदय, निगमबोध निविद्वती, गाथावती, श्रुतिवाहिनी, षष्ठ्यास्वस्ति इत्यादि। इन ग्रन्थों में वैदिक-रहस्य जानने के बहुत से साधन बहुत उत्तम रीति से निर्दिष्ट हुए हैं उनके ज्ञान से वेदार्थ शिक्षा में बहुत सौकर्य होगा। मैं आशा करता हूँ कि यदि ईश्वर की कृपा हुई तो वे सब ग्रन्थ भी क्रमशः मुद्रित होकर वेदार्थजिज्ञासु महानुभावों के दृष्टिपथ में बहुत शीघ्र आ जावेंगे।

‘वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः,’ ‘ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽये-
तव्यः’ इत्यादिषु सत्स्वपि परःसहस्रेषु वेदाध्ययनविधायकेषु स्मृतिवाक्येषु भारतवर्षेऽ-
धुना वेदानां पठनपाठनप्रचारस्वतीवविरलः । उपनयनसंस्कारकाले गायत्रीमन्त्रोपदेश-
मात्रेण वेदाध्ययनस्येतिकर्तव्यतां मन्यमानाः साम्प्रतिका द्विजपुङ्गवाः परिदृश्यन्ते ।
ये केचित् साम्प्रतं वैदिकसंज्ञाभाजो दृश्यन्तेऽपि कुत्रचित् वेदाभ्यासशीलिनः द्विज-
वरास्तेपि संहितापारायणे एव कृतश्रमाः न प्रायेण तदर्थान्वबोधक्षमाः । एवं भारतीयानां
परमो निधिरयं वेदः दुरुहोऽपि सुतरां दुरुहतरः संवृत्तः । ये च केचिन्महाशया वैदिक-
साहित्यगौरवाकृष्टमनसस्तद्भ्यासे यतितुमीहन्ते तेऽपि सामग्र्यभावान्मार्ग एवावसी-
दन्ति । मङ्गलीमिमां दुरवस्थामाकलय्य जयपुरराजसभाप्रधानपण्डितैः सकलविद्वन्मंड-
लमूर्धन्यैर्विद्यावाचस्पतिश्रीमन्मधुसूदनभा शर्ममहानुभावैः वैदिक साहित्यप्रविवि-
क्षणां सौकर्याय परिभाषाप्रकाशरूपोऽयं ग्रन्थो निरमायि । अस्य सम्यगध्ययनेन
वेदार्थजिघृक्षवः पारिभाषिकान् शब्दान् समधिगत्य सुखं वेदवाक्यानां तात्पर्यमुन्नेतुं
पारयिष्यन्तीत्यत्र सुधिय एव प्रमाणम् ।

श्रीमद्विर्विद्यावाचस्पतिमहोदयैरन्येऽपि बहवो ग्रन्था उपनिबद्धास्तेषु कतिपये
मुद्रिताः सहृदयपाठकानां दृष्टिपथमागता एव । इन्द्रविजयाभिधस्वेको वैदिकसभ्यता-
सूचको ग्रन्थः मुद्रायन्त्रस्थः शीघ्रमेव प्रकाशयिष्यते । एतस्मिन् ग्रन्थरत्ने बहवो
विवादास्पदीभूता विषया विविधाभिर्युक्तिभिरनेकविधवैदिकपौराणिकप्रमाणजातैश्च
सुविशदं निरूपिताः । भारतवर्षीयभूगोलविषये चाद्यतनीया मिथ्या धारणा सप्रमाणं
निरस्ता । लङ्कायाः स्थितिसम्बन्धेऽपि साम्प्रतं विद्वत्समाजेषु बह्व्यो विप्रतिपत्तयो
दृश्यन्ते । केचिस्सिंहलमेव लङ्कात्वेनावगच्छन्ति अन्ये पुनः प्रकटितनिजप्रज्ञापाटवम-
हिमानोऽमरकण्टकाभिधानपर्वते नर्मदाया उद्गमस्थानसमीप एव लङ्कायाः स्थितिं
प्रतिपादयन्ति । एषा लङ्कानगरी सिंहलद्वीपादपि दक्षिणे निरक्षदेशे आसीत् इति
बहुभिः प्रमाणैः सम्यक् प्रतिपादितमस्मिन् ग्रन्थे । यदवलोकनेन सुतरां शाम्यत्येवै-
तद्विषयको विवादः । अन्ये च बहवो ज्ञातव्यविषयाः स्वयमेवास्वादयिष्यन्ते
‘नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते’ इति दिक् ।

श्रीआद्यादत्तष्वकुरः ।

अथ शतसूत्रीदेवतानिवित्सूचीपत्रम् ॥

| | | | |
|----------------------------------|-----|-----|----|
| १. एका देवः | ... | ... | १ |
| २. द्वौ देवौ | ... | ... | १ |
| ३. त्रयो देवाः | ... | ... | १ |
| ४. चत्वारो देवाः | ... | ... | २ |
| ५. पञ्चदेवाः | ... | ... | २ |
| ६. षड्देवाः | ... | ... | ३ |
| ७. सप्तदेवाः | ... | ... | ३ |
| ८. अष्टदेवाः | ... | ... | ३ |
| ९. नवदेवाः | ... | ... | ४ |
| १०. दशदेवाः | ... | ... | ४ |
| ११. एकादशदेवाः | ... | ... | ४ |
| १२. द्वादशदेवाः | ... | ... | ५ |
| इति प्रथमः पाठः । (१२) (१२) | | | |
| १. भागिनो देवाः | ... | ... | ५ |
| २. स्थानिनो देवाः | ... | ... | ५ |
| ३. क्रमवास्तव्या देवाः | ... | ... | ५ |
| ४. यावानो देवाः | ... | ... | ६ |
| ५. नपातो देवाः | ... | ... | ६ |
| ६. अर्थपतयो देवाः | ... | ... | ६ |
| ७. कर्मनामिका देवाः | ... | ... | ७ |
| इति द्वितीयः पाठः । (७) (१६) | | | |
| १. देवताद्वन्द्वानि | ... | ... | ७ |
| २. गणदेवताः | ... | ... | ७ |
| ३. वसुध्वादिस्थाः | ... | ... | ८ |
| ४. विश्वेदेवाः | ... | ... | ९ |
| ५. अस्तो देवाः | ... | ... | ११ |
| ६. साध्या देवाः | ... | ... | १३ |
| ७. आप्या देवाः | ... | ... | १३ |
| ८. ऋभवो देवाः | ... | ... | १३ |
| ९. देविकाः | ... | ... | १३ |
| १०. देवपत्न्यः | ... | ... | १४ |
| ११. देवस्त्रियः | ... | ... | १४ |
| इति तृतीयः पाठः । (११) (३०) | | | |

| | | | |
|--|-----|-----|----|
| १. ऋषयः | ... | ... | १४ |
| २. भृग्वक्त्रिः | ... | ... | १६ |
| ३. अथर्वानः | ... | ... | १६ |
| ४. पितरः | ... | ... | १६ |
| ५. यमाः | ... | ... | २० |
| ६. नक्षत्राणि | ... | ... | २० |
| ७. गन्धर्वाः | ... | ... | २४ |
| ८. गणदेवानां व्रतपत्न्यः | ... | ... | २५ |
| ९. देवमहिमानः | ... | ... | २५ |
| इति चतुर्थः पाठः । (७) (३७) | | | |
| १. प्रजापतेस्तनवः | ... | ... | २५ |
| २. अग्नेस्तनवः | ... | ... | २६ |
| ३. अग्निरूपाणि | ... | ... | २७ |
| ४. अग्निबंधवः | ... | ... | २८ |
| ५. अग्निजा धर्माः | ... | ... | २८ |
| ६. अग्निविशेषाः | ... | ... | २६ |
| ७. वायुप्रभेदाः | ... | ... | ३४ |
| ८. ब्रह्मण्यः परिमरः संवर्गश्च | ... | ... | ३४ |
| इति पञ्चमः पाठः । (८) (४५) | | | |
| १. साहस्रम् | ... | ... | ३५ |
| २. प्रजापतिरसप्रबर्हणम् | ... | ... | ३५ |
| ३. चतुष्पाद्ब्रह्मण्यश्चतुष्कलाः पादाः | ... | ... | ३६ |
| ४. पञ्चाध्यात्मप्राज्ञाः | ... | ... | ३६ |
| ५. चातुःप्रारण्यं ब्रह्मौदनम् | ... | ... | ३६ |
| ६. परमा विराट् | ... | ... | ३६ |
| (१.) देवमक्तयः | ... | ... | ३७ |
| (२.) प्राज्ञाः | ... | ... | ३८ |
| ७. त्रिविधा विराडात्मानः | ... | ... | ३९ |
| ८. पारिष्कविकाहोरात्राणि | ... | ... | ४१ |
| ९. आभिष्कविकाहोरात्राणि | ... | ... | ४१ |
| १०. पृथ्याहोरात्राणि | ... | ... | ४२ |
| ११. स्तोमबंधुता | ... | ... | ४४ |
| १२. सामहृतिः | ... | ... | ४५ |

इति षष्ठः पाठः । (१४) (५६)

| | | | |
|-------------|-----|-----|----|
| १. ऋतवः | ... | ... | ४६ |
| २. छंदांसि | ... | ... | ४७ |
| ३. देवपादाः | ... | ... | ४८ |
| ४. मनोताः | ... | ... | ४८ |
| ५. आपः | ... | ... | ४८ |
| ६. पशवः | ... | ... | ४९ |
| ७. ओषधयः | ... | ... | ४९ |

इति सप्तमः पाठः । (७) (६६)

| | | | |
|-----------------------------|-----|-----|----|
| १. त्रेताग्निविद्या | ... | ... | ४९ |
| २. जीवात्मनि परमात्मसंज्ञवः | ... | ... | ४९ |
| ३. आत्मबन्धवः | ... | ... | ५० |
| ४. जीवात्मप्रभेदाः | ... | ... | ५१ |
| ५. जीवात्मनां गतयः | ... | ... | ५३ |
| ६. पंथानः | ... | ... | ५५ |
| ७. अनुविस्तयः | ... | ... | ५८ |
| ८. लोकाः=आत्मगम्यलोकाः | ... | ... | ५८ |
| ९. दिशः | ... | ... | ६० |

इत्यष्टमः पाठः । (६) (७५)

| | | | |
|----|-------------------|-----|----|
| १. | यज्ञप्रतिपत्तिः | ... | ६१ |
| | पाकयज्ञः | ... | ६२ |
| | हविर्यज्ञः | ... | ६२ |
| | महायज्ञः | ... | ६३ |
| २. | अतिरिक्तशिरोयज्ञौ | ... | ६४ |
| | यज्ञपरिशेषः | ... | ६४ |
| | यज्ञक्रमाः | ... | ६४ |

३. संवत्सराहर्विभागाः ... ६४

४. सहस्रसंवत्सरप्रतिमाः ... ६५

इति नवमः पाठः । (४) (७६)

| | | | |
|------------------|-----|-----|----|
| १. यज्ञयोनयः | ... | ... | ६५ |
| २. ऋत्विजः | ... | ... | ६६ |
| ३. हविर्पंक्तिः | ... | ... | ६७ |
| ४. सोमविशेषाः | ... | ... | ६७ |
| ५. सोमचतुष्टयम् | ... | ... | ६८ |
| ६. सोमांशवः | ... | ... | ६९ |
| ७. ग्रहाः | ... | ... | ६९ |
| ८. सृष्टिबन्धवः | ... | ... | ७० |
| ९. रेतसः सृष्टिः | ... | ... | ७० |
| १०. सहस्रराशि | ... | ... | ७१ |
| ११. सप्तपोषाः | ... | ... | ७१ |

इति दशमः पाठः । (११) (८०)

| | | | |
|-----------------------------|-----|-----|----|
| १. दीक्षादीक्षिताः | ... | ... | ७१ |
| २. पुरोहितपुरोधातारः | ... | ... | ७१ |
| ३. सावित्री सवितारः | ... | ... | ७२ |
| ४. बार्हस्पत्याः स्तोमभागाः | ... | ... | ७२ |
| ५. सतां सत्रस्य सद्भावः | ... | ... | ७३ |
| ६. द्वादशमहाभूतप्रतिष्ठाः | ... | ... | ७३ |
| ७. षट्प्रतिष्ठाः | ... | ... | ७३ |
| ८. अक्षिताक्षयप्रतिष्ठाः | ... | ... | ७३ |
| ९. द्वादशजयाः | ... | ... | ७४ |
| १०. ब्रह्मसत्रम् | ... | ... | ७४ |

इत्येकादशः पाठः । (१०) (१००)

मनुदेवमहाचरितः, वाराणसी

ओं तत् सत् ॥

अथ शतसूत्री देवतानिवित्

देवानां भद्रा सुमतिर्ज्युतां देवानां रातिरभि नो निवर्तताम् ॥

देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ १। ८६। २ ॥

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः ॥ १। ८६। ० ॥

बालानां ब्रह्मविज्ञानप्रवेशाय वितन्यते ॥

शतसूत्री निविदैवी स्वल्पव्याख्यानुगर्भिता ॥ १ ॥

यो विद्याभिविदं दैवी वेदविद्यां सुवेद, सः ॥

एषामेव हि देवानां विज्ञानं वेद उच्यते ॥ २ ॥

एको देवः

- (१) प्रजापतिरेवैको देवः । तत् प्रभूतत्वात् सर्वेषाम् ॥ प्रजापतिस्त्वेवेदं सर्वमसृ-
जत यदिदं किञ्च ॥ श० ६। १। २। ११ ॥ प्रजा वै भूतानि । देवाः पितरो
मनुष्याः पशवोऽसुरा इति पञ्चभूतानि ॥ श० २। ३। ४। १ ॥ प्रजापतिर्वै
देवानां वीर्यवत्तमः ॥ श० १३। १। २। ५ ॥ एष ह वै प्रजापतिः ॥

द्वौ देवौ

- (१) द्यावापृथिव्योर्वै सर्वा देवताः प्रतिष्ठिताः ॥ श० १३। २। ६। १ ॥
(२) अग्निः सोमः—इति द्वौ रेतोधसौ देवौ ॥ अग्निर्वै रेतोधाः । सोमो वै
रेतोधाः । अग्नीषोमात्मकं जगत् ।
(३) इन्द्राग्नी, वै देवानामोजस्वितमौ ॥ श० १३। १। २। ६ ॥
(४) द्वाया वै देवाः । देवा अहैव देवाः । अथ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते
मनुष्यदेवाः ॥ श० ॥ तत्रैते प्राणदेवा ईडेन्याः । मनुष्यदेवास्तु सपय्येण्या
इत्याहुः ॥

त्रयो देवाः

१. अग्निः, इन्द्रः, सूर्यः—इत्येते त्रयोऽतिष्ठावानो देवाः । अग्नौ वर्चः ।

इन्द्रे ओजः । सूर्ये भ्राजः । एतानि ह वै तेजांसि । एतानि वीर्याणि ॥
श० ४ । ४ । ५ ॥

२. वीर्यं वा अग्निः । वीर्यामिन्द्रः । वीर्यं विष्णुः ॥ तै० ब्रा०
१ । ७ । २ ॥ त एते त्रयो देवा वीर्याणि । ब्रह्मक्षत्रं विडिति वीर्याणि ।
ब्रह्म वा अग्निः । क्षत्रमिन्द्रः । तै० ब्रा० ३ । ६ । १६ ॥

३. अग्निः सोमो विष्णुरित्यमी त्रयो देवा उपसदां रूपम् ॥ ऐ० १३ । ३२ ॥
श० ३ । ३ । ५ । ६ ॥

४. अग्निः, वायुः, सूर्यः—इति वाजिनो देवाः । तै० ब्रा० १ । ६ । ३ ॥
वाजिन एवैते त्रयः केशिनो देवाः ॥ ऋ० सं० २ । ३ । २२ । ४ ॥ अथ०
६ । २६ । ६ ॥ त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपते एकएषाम् ॥

विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्भ्राजिरेऽस्य ददृशे न रूपम् ॥

५. मित्रः, वरुणः, अर्यमा—इति त्रयः प्रचेतसो देवाः ॥ ऋ० सं०
१ । ४१ । १ ॥

६. अग्निः, यमः, सोमः—इत्येते त्रयः पितृदेवाः ॥ सर्वेषां पितृणा-
मेतन्मयत्वात् ॥

७. त्रया वै देवाः—वसवो रुद्रा आदित्याः—इति श्रुतिः ॥ श० ४ । ३ । २ । १ ॥

चत्वारो देवाः

(१) अग्निः, रुद्रः, वरुणः, इन्द्रः—इतीन्द्रतुरीयाश्चत्वारोऽमी ऐन्द्राग्नदेवाः ।
तत्राद्यास्त्रयोऽग्निभागा अग्नयः । तेष्विन्द्रस्तुरीयो भागः संसृष्टः । तै० ब्रा०
१ । ७ । १ ॥ श० ५ । २ । ३ । १२ ॥ तेनैताविन्द्राग्नी द्वौ देवौ संभवतः ॥
याज्ञिके तु विधावयमिन्द्रो रुद्रं वरुणं चान्तरा प्रयुज्यते ॥

(२) अग्निः, इन्द्रः, वायुः, मरुतः—इति चत्वारो यशःसत्रिया देवाः तां० ७
अ० । ५ ख० ॥ ६ ॥

पञ्चदेवाः

(१) अग्निः, वायुः, आदित्यः, चन्द्रमाः, दिशः—इति पञ्चलोकपा देवाः ।
तत्रादितस्त्रयाणामग्नित्वं शेषयोस्तु द्वयोः सोमत्वं विद्यात् ॥

(२) अग्निः, सोमः, इन्द्रः, वरुणः, बृहस्पतिः—इत्येते तानूनप्त्रियाः पञ्चदेवाः ।
अग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैः, इन्द्रो मरुद्भिः, वरुण आदित्यैः, बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः
सह व्युत्क्रम्य वस्वादीनेतान् वरुणगृहे विनिधाय च तानूनग्रमकुर्वन् ॥

(३)

- (३) अग्नीसोमौ । अग्निः । मित्रावरुणौ । ता वा एताः पञ्च देवताः पशु-
यागीयाः ॥
- (४) अग्निः पवित्रं स मा पुनातु । वायुः सोमः सूर्य इन्द्रः पवित्रं ते मा पुनन्तु
इति पञ्चैते पवित्रदेवाः ॥

षड्देवाः

- (१) इन्द्रवायू । मित्रावरुणौ । अश्विनौ—इति षट्क्रमभक्त्या देवाः । यथा पूर्वं
हीमे सोमस्य भक्षयन्ति ॥
- (२) अग्निः, वायुः, आदित्यः, विद्युत्, चन्द्रमाः, आपः—इति षट् ब्रह्मद्वारदेवाः ॥
श० ११ । ३ । २ । १ ॥
- (३) अग्निः, वायुः, वरुणः, इन्द्रः, प्रजापतिः, ब्रह्म—इति षड् देवयानदेवाः ॥
- (४) अग्निः, इन्द्रः, विश्वेदेवाः, वाक्, गौः, द्यौः—इति षट् पृष्ठ्या देवाः ॥
रथन्तरस्याग्निं रन्द्रो बृहत् । वैरूपस्य विश्वेदेवा । वाग् वैराजस्य । शाक्रस्य
गौर्द्यौ रैवतस्य—इत्येवं षण्णामह्नां क्रमेणैते देवा नियन्तारो भवन्ति ॥
- (५) अग्निः, वायुः, इन्द्रः, बृहस्पतिः, प्रजापतिः, ब्रह्म—इति षट् सावित्रा देवाः ॥

सप्तदेवाः

- (१) वायुः, इन्द्रवायू, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, इन्द्रः, विश्वेदेवाः, सरस्वती—इति
सप्तैताः प्रउग देवताः । प्रउगशस्त्रं होत्रा शंसनीयम् ॥
- (२) अग्निर्गृह्पतीनां सुवते । सोमो वनस्पतीनाम् । रुद्रः पशूनाम् । बृहस्पतिर्वा-
चाम् । इन्द्रो ज्येष्ठानाम् । मित्रः सत्यानाम् । वरुणो धर्मपतीनाम् ॥
एतावन्तो वै देवानां सप्तसवाः । एतदेव सर्वं भवति ॥ तै० ब्रा० १ । ७ । ४ ॥
तेनैते सर्वसूदेवाः ॥
- (३) अग्निः, सोमः, सविता, मित्रः, बृहस्पतिः, ब्रह्मणस्पतिः, सरस्वती—इति
सप्तैता ब्राह्मणानां देवताः । ब्रह्मवीर्यप्रदानव्रतैरेतैर्देवैर्यस्यात्मा संस्क्रियते स
श्रोत्रियो ब्राह्मणो भवति ॥

अष्ट देवाः

- (१) इन्द्रः, वरुणः, सोमः, रुद्रः, पर्जन्यः, यमः, मृत्युः, ईशानः—
इत्यष्टौ देवत्रा क्षत्राणि । क्षत्रवीर्यप्रदानव्रतैरेतैर्देवैः संस्कृतात्मा क्षत्रियो
भवति ॥
- (२) वसवो, रुद्रा, आदित्या, विश्वेदेवाः, मरुतः—इत्येतानि यानि देवजातानि

गणेश आख्यायन्ते तेभ्यो विद्वीर्यमाप्यते । उपलक्षणमेतत्साध्यानामो-
प्त्यानामृभूणाञ्च ॥ तैः संस्कृतात्मा वैश्यो भवति ॥ पूषैष शूद्राणां देवता
भवति । पशुदेवतायाः पूष्णोऽस्या विशेषेण सर्वत्रोपपत्तेः ॥

- (३) ^१अग्निः ^२वायुः ^३आदित्यः ^४दिशः ^५औषधिवनस्पतयः ^६चन्द्रमाः ^७मृत्युः ^८आपः—
इत्येतेऽष्टौ देहापित्विनो देवा अशनायापिपासासभागिन एतरेयोक्ताः ॥

नवदेवाः

- (१) अग्निः । सोमः । सूर्यः इति त्रयो वसव्या देवाः । मित्रो वरुणोऽर्यमेति
त्रयः शर्मण्या देवाः । अपानपात् आशुः हेमा—इति त्रयः सपीतयो
देवाः । अपानपादाशु हेमन् य ऊर्मिरिति यजुर्मन्त्रे (तै० सं० १।७।७) ॥
आशुहेमेत्येकं पदमाह सायणः ॥ वसव्याः शर्मण्याः सपीतयः—इत्येते
देवाः प्रवर्षणाः । तेहि वृष्ट्या ईशते ॥

दश देवाः

- (१) ^१अग्निः ^२सोमः ^३सविता ^४सरस्वती ^५वरुणपूषणौ ^६त्वष्टा ॥

^७अथ ^८विष्णुश्च ^९बृहस्पतिरिन्द्रो ^{१०}वरुणस्य संसृपो देवाः ॥ १ ॥

^१तेजो ^२द्युम्नं ^३प्रसवं ^४वाचमथौजः ^५पशूंश्च ^६रूपाणि ॥

^७यज्ञं ^८ब्रह्म ^९तथेन्द्रियमिति ते देवाः ^{१०}सुवन्ति धर्म्मणि ॥ २ ॥

तेनैते सृप्तिसूदेवाः ॥ तदुक्तं यजुर्मन्त्रे—

^१“सवित्रा ^२प्रसवित्रा, ^३सरस्वत्या ^४वाचा, ^५त्वष्ट्रा ^६रूपैः, ^७पूष्णा ^८पशुभिः,

^९इन्द्रेणास्मे, ^{१०}बृहस्पतिना ^{११}ब्रह्मणा, ^{१२}वरुणेनौजसा, ^{१३}अग्निना ^{१४}तेजसा, ^{१५}सोमेन

^{१६}राज्ञा, ^{१७}विष्णुना ^{१८}दशम्या, ^{१९}देवतया ^{२०}प्रसूतः ^{२१}प्रसर्पामि ॥” य० सं० ॥

ता दशैताः संसृपो देवता वारुणतन्त्रानुगता इष्यन्ते ॥

एकादश देवाः

- (१) “ये देवासो दिव्येकादशस्थ पृथिव्यामध्येकादशस्थ । अप्सुक्षितो महिनै-
कादशस्थ । ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्” ऋ० १ । १३६ । ११ ॥

(५)

द्वादश देवाः

- (१) अग्निः । वायुः । इन्द्रः । सूर्यः । बृहस्पतिः । ब्रह्मणस्पतिः । चन्द्रमाः । सोमः । वरुणः । मृत्युः । प्रजापतिः । ब्रह्म । इत्येते द्वादशातिस्तुतयो । देवाः । देवेष्वेषामतिष्ठावत्वात् ॥ १ ॥

इति प्रथमः पाठः ॥ १ ॥

भागिनो देवाः

- (१) आहुति भागाः । स्तोमभागाः । छन्दोभागाः । इत्येवं त्रिविधाः सर्वे देवाः । तत्राहवनीया इष्टिभिः पशुभिः सोमैरिज्यन्ते । स्तोम्याः स्तोत्रैः स्तूयन्ते । छन्दस्याः शस्त्रैः शस्यन्ते ॥
- (२) अष्टौ वसवः । एकादशरुद्राः । द्वादशादित्याः । प्रजापतिश्च वषट्कारश्च । इति सोमपास्त्रयस्त्रिंशत् ॥ एकादश प्रयाजाः । एकादशानुयाजाः । एकादशोपयाजाः । इत्यसोमपाः पशुभाजनास्त्रयस्त्रिंशत् ॥ स्तोत्रियाण्यहानि त्रयस्त्रिंशत् स्तोम्या देवाः ॥ इतरे छन्दस्या उक्थ्याः ॥

स्थानिनो देवाः

- (१) आम्भसा नाभसा माहसाः—इत्येवं त्रिविधाः सर्वे देवाः ॥ अयं वै लोकोऽम्भांसि । तस्य वसवोऽधिपतयः । अग्निर्ज्योतिः ॥ अन्तरिक्षं वै नभांसि । तस्य रुद्रा अधिपतयः । वायुर्ज्योतिः ॥ असौ वै लोको महांसि तस्यादित्या अधिपतयः । सूर्यो ज्योतिः ॥ सुवर्गो वै लोको महः ॥ तै० ब्रा० ३—८—१८ ॥
- (२) अग्निः सर्वा देवता आम्भसाः । वायुः सर्वा देवता नाभसाः । सूर्यः सर्वा देवता माहसाः ॥ देवाः मनुष्यः पितरोऽसुराः—इति चत्वार्य्यम्भांसि । तेषु सर्वेष्वम्भो नभ इव भवति ॥

क्रमवास्तव्या देवाः

- (१) इन्द्रः । यमोराजा । नडो नैषधः । अनभ्रन् सांगमनः । असन् पांसवः । इत्येते देवा योऽस्ति तस्मिन् वसन्ति । आहवनीयो गार्हपत्योऽन्वाहार्यपचनः सभ्याग्निः आवसथ्याग्निः—इति हि ता एताः पञ्चदेवताः प्रत्यर्थं वसन्ति । इति नित्यावासा देवाः ॥
- (२) त्रय एवाद्याः प्रत्यर्थं क्रमेण वसन्तीति लौकिका वास्तुशास्त्रविदः पश्यन्ति ॥

यावानो देवाः

- (१) अग्निः । उषाः । अश्विनौ । यमः । सविता—इति प्रातर्यावाणो देवाः ।
इन्द्रश्छन्दांसि, ऋभवः, वृषाकपायी—इति सायं यावानः ॥ षभिमातरो
मरुतः शुभं यावानः ॥ ऋ० सं० १ । ८६ । ७ ॥

नपातो देवाः

अपां नपात् । तनूनपात् । शबसो नपात् । मरुतो नपात् । तेजो नपात् । ऊर्जो
नपात् । ऋषीणां नपात् । तै० ब्रा० २ । ६ । १५ ॥ इति सप्त नपातो देवाः ॥

अर्थपतयो देवाः

- (१) ^१प्रजापतिः, ^२वाचस्पतिः, ^३बृहस्पतिः, ^४ब्रह्मणस्पतिः—इति ब्रह्मविशेषाः ॥ १ ॥ (४)
^१गृहपतिः, ^२भूपतिः, ^३भुवनपतिः, ^४भूतानां पतिः । ^५शक्तिनस्पतिः—इत्यग्नि-
विशेषाः ॥ २ ॥ (६) ^१सदसस्पतिः, ^२गणपतिः, ^३प्रियपतिः, ^४वास्तोष्पतिः, ^५गवां
^६पतिः, ^६विशांपतिः—इतीन्द्रविशेषाः । (१५)
(२) ^१दिवस्पतिः, ^२देवपतिः, ^३शचीपतिः—इतीन्द्रस्य नामानि ॥ ४ ॥ (१८) धर्मस्य
^१पतिः, ^२अपां पतिः, ^३यादसां पतिः—इति वरुणस्य नामानि ॥ ५ ॥ (२१)
^१वास्तोष्पतिः, ^२पशुपतिः, ^३भूतपतिः, ^४क्षेत्रस्य पतिः—इति रुद्रनामानि ॥ ६ ॥
(२५) ^१ब्रह्मणस्पतिः, ^२वनस्पतिः, ^३नक्षत्रपतिः, ^४ओषधिपतिः—इति चन्द्र-
नामानि ॥ ७ ॥ (२६) ^१गवां पतिः, ^२ज्योतिषां पतिः, ^३त्विषां पतिः, ^४अहर्पतिः—
इति सूर्य्यनामानि ॥ ८ ॥ (३३) ^१सरितां पतिः, ^२अपां पतिः, ^३यादसां पतिः—
इति सरस्वतो नामानि ॥ ९ ॥ (३६)
(३) ^१सत्यस्य पतिर्मित्रः ॥ १० ॥ ^१दानपतिर्य्यमा ॥ ११ ॥ ^१क्षेत्रस्य पतिः पर्जन्यः

(७)

॥ १२ ॥ अध्वनां पतिर्यमः ॥ १३ ॥ (४०) अग्निवाय्वादित्याः प्रतपतयो
लोकपतयश्च ॥ १४ ॥ विश्वपतिः, विशांपतिश्चः, राजेति ॥ १५ ॥

कार्म्मनामिका देवाः

(१) सत्यः^१ । वैश्वानरः^२ । जातवेदाः^३ । द्रविणोदाः^४ ॥ १ ॥ अज^५ एकपात् । अहि-
बुध्न्यः^६ । वायुः^७ । मातरिश्वा^८ । पवमानः^९ । वातः^{१०} । अथर्वा^{११} ॥ २ ॥ दध्यङ्^{१२} ।
दधिक्राः^{१३} । दधिक्रावाः^{१४} । रोहितः^{१५} । वाजिनः^{१६} । वृषाकपिः^{१७} । मरुत्वान्^{१८} । शिपिविष्टः^{१९} ।
धाता^{२०} । विधाता^{२१} । मृत्युः^{२२} । यमः^{२३} । मनुः^{२४} । मन्युः^{२५} । केशी^{२६} । विश्वकर्मा^{२७} । विश्वानरः^{२८} ।
अयम्बकः^{२९} । वाचस्पतिः^{३०} । वास्तोष्पतिः^{३१} । क्षेत्रस्यपतिः^{३२} । वनस्पतिः^{३३} । सरस्वान्^{३४} ।
समुद्रः^{३५} । कः^{३६} । तार्क्ष्यः^{३७} । सुपर्णः^{३८} । श्येनः^{३९} । पुरुरवाः^{४०} । आयुः^{४१} । असुनीतिः^{४२} । वेनः^{४३} ।
ऋतः^{४४} । ईदुः^{४५} ॥ इति कार्म्मनामिका देवाः ॥

इति द्वितीयः पाठः ॥ २ ॥

देवताद्वन्द्वानि

(१) अश्विनौ । द्यावापृथिव्यौ । अहोरात्रे ॥ १ ॥ अग्नीषोमौ । अग्नापूषणौ ।
अग्नाविष्णू । अग्नी पर्जन्यौ ॥ २ ॥ वातापर्जन्यौ ॥ ३ ॥ इन्द्राग्नी । इन्द्रवायू ।
इन्द्रापर्वतौ । इन्द्राकुत्सौ । इन्द्रापूषणौ । इन्द्राविष्णू । इन्द्राबृहस्पती । इन्द्राब्रह्मणस्पती ।
इन्द्रासोमौ । इन्द्रावरुणौ ॥ ४ ॥ मित्रावरुणौ । विष्णूवरुणौ । बृहस्पतिवरुणौ ॥ ५ ॥
बृहस्पतिसोमौ ॥ ६ ॥ सोमारुद्रौ । सोमापूषणौ ॥ ७ ॥ इत्येतानि देवता-
द्वन्द्वानि ।

गणदेवताः

(१) वसवः, रुद्राः, आदित्याः, विश्वेदेवाः, मरुतः, साध्याः, आप्त्याः, ऋभवः,
वाजिनः, केशिनः, देविकाः, देवपत्न्यः, देवस्त्रियः, सप्तर्षयः, भृगवः, अंगिरसः, अथ-
र्वाणः, पितरः, यमाः नक्षत्राणि, गन्धर्वाः—इत्येते गणदेवाः ॥

वसुरुद्रादित्या आरण्यकाः

- (१) ^१अग्निश्च ^२जातवेदाश्च ^३सहोजा ^४अजिरः प्रभुः ।
^५वैश्वानरो ^६नय्यपाश्च ^७पंक्तिराधाश्च सप्तमः ॥ १ ॥
^८विसर्पे ^९वाष्टमोऽग्नीनामेतेऽष्टौ वसवः क्षितौ ।
- (२) ^१प्रभ्राजमाना ^२व्यवदाता याश्च ^३वासुकि ^४वैद्युताः ॥ २ ॥
^५रजताः ^६परुषाः ^७श्यामाः ^८कपिला ^९अतिलोहिताः ।
^{१०}ऊर्ध्वा ^{११}अवपतन्त्यश्च रुद्रा एकादश द्यवि ॥ ३ ॥
- (३) ^१सविता ^२वरुणः ^३सूर्यः ^४पूषा ^५विश्वानरो ^६भगः ।
^७यमो ^८वृषाकपिः ^९केशी ^{१०}समुद्रोऽप्यज ^{११}एकपात् ॥ ४ ॥
^{१२}विष्णुश्च द्वादशादित्या इति केचित् प्रचक्षते ।
तेऽमी आग्नेयवायव्यज्यौतिषप्राणजातयः ॥ ५ ॥

वसुरुद्रादित्या आध्यात्मिकाः

- (१) ^१अग्निश्च ^२पृथिवी च । ^३वायुश्चान्तरिक्षं च । ^४आदित्यश्च ^५द्यौश्च । ^६चन्द्र-
^७माश्च ^८नक्षत्राणि च । इत्येतेऽष्टौ वसवः ॥ दशमे पुरुषे प्राणाः । आत्मै-
कादशः । इत्येकादशरुद्राः ॥ द्वादशमासाः संवत्सरस्य । तेऽमी द्वादशा-
दित्याः ॥ इत्थमध्यात्मम् ॥

वसुरुद्रादित्या अधिदैविकाः

- (१) (१) पृथिवी, जलम्, तेजः, वायुः, आकाशः, चन्द्रः, सूर्यः, आत्मा, इत्यष्टौ
वसवः । तत्रात्मा मनः । चन्द्रसूर्यौ प्राणौ । आकाशादयः पञ्चवाचो
भेदः । आत्मनः स्थाने विद्युतमाह याज्ञवल्क्यः ॥

(६)

- (२) (२) अथ गार्हपत्याग्निः, आहवनीयाग्निः, अष्टौ धिष्ण्याग्नयः,
नैऋत्याग्निश्चेत्येकादशरुद्राः ॥
(३) विभुः, वह्निः, प्रचेताः, विश्ववेदाः, कविः, बम्भारिः, दुवस्वान्,
शुन्ध्युः—इत्यष्टौ धिष्ण्याग्नयः ॥
(४) प्रवाहणः, हव्यवाहनः, श्वात्रः, तुथः, उशिकः, अङ्गारिः, अवस्युः,
शुन्ध्युरित्येतेषामन्यानि नामानि ॥
(५) आग्नीध्रीयः, होत्रीयः, मैत्रावरुणः, ब्राह्मणाच्छंसी, पोत्रीयः, नेष्ट्रीयः,
अच्छावाकीयः, मार्जालीयः—इत्यष्टौ धिष्ण्याग्नीनामेषां याज्ञिकानि नामानि ॥
(६) अग्नय एवैतेऽन्तरिक्षभाजनाः सन्तो रुद्रा उच्यन्ते । तेषां द्वे तन्वौ
घोरा चान्या शिवा चान्या ॥

- (३) (७) अथ धाता, अर्य्यमा, मित्रः, वरुणः, अंशः, भगः, पूषा, त्वष्टा,
पर्जन्यः, सविता, विवस्वान्, विष्णुः—इत्येते द्वादशादित्याः ॥ इत्यधिदैवतम् ।
(मै० सं० १ । ६ । १२)

वसुरुद्रादित्याः पौराणिकाः

- (१) (१) ध्रुवः, धरः, सोमः, आपः, वायुः, अग्निः, प्रत्यूषः, प्रभासः ।
इत्यष्टौ वसवः ॥
(२) (२) अजएकपात्, अहिबुध्न्यः, विरूपाक्षः, त्वष्टा वा अयोनिजो वा गर्भो
वेति ॥ रैवतो भैरवो वा कपर्दी वा वीरभदो वेति ॥ हरो नकुलीशो वा पिङ्गलो
वा स्थाणुर्बेति ॥ बहुरूपः सेनानीर्वा गिरिशो वेति ॥ त्र्यम्बको भुवनेश्वरो
वा विश्वेश्वरो वा सुरेश्वरो वेति ॥ सावित्रो भूतेशो वा कपाली वेति ॥
जगन्तो वृषाकपिर्वा शम्भुर्वा सन्ध्यो वेति ॥ पिनाकी मृगव्याधो वा लुब्धको
वा शर्वो वेति ॥ अपराजितो महातेजा वा ॥ इत्येकादशरुद्राः ॥
(३) (३) इन्द्रः, धाता, भगः, पूषा, मित्रः, वरुणः, अर्य्यमा, अंशुः,
विवस्वान्, त्वष्टा, सविता, विष्णुः—इत्येते द्वादशादित्याः ॥ ते चामी
पुराणोक्ता नाक्षत्रिका देवाः ॥

विश्वेदेवाः

- (१) विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः । (श० १३ । १ । २ । ८) ॥

ते चैते द्विविधाः । नियतगणाः । अनियतगणाश्चेति । तत्र नियतगणास्त्रयो-
दशधा वसवः, रुद्राः, आदित्याः, भृगवः, अङ्गिरसः, ऋतवः, अथ सप्तविधा
मरुतां गणाश्चेति ॥ वसवो रुद्रा आदित्या इत्येते संहता विश्वेदेवा इष्यन्ते
तेऽग्नी संस्त्रावभागास्तैत्तिरीयकैरुक्ताः (तै० ब्रा० ३ । ३ । ६) । आपो वायुः
सोम इत्येते खल्वशरीरा भृगवः । अग्नियमादित्याः सशरीरा अङ्गिरसः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्च विश्वेदेवाः ॥ ऋतवो वै विश्वेदेवाः (श० ७ । १ । १) ॥
मरुतो विश्वेदेवाः । तत्र ऋतुभिन्ना द्वादश विश्वेदेवा वैश्यानां देवताः प्रति-
पत्तव्याः ॥

(२) अथ अनियतगणा विश्वेदेवा अनेकधा श्रूयन्ते । तद्यथा ऋतवः,
आपः, प्राणाः, संवत्सरः, अश्विनौ—इत्येते सयुजो भूता विश्वेदेवाः ॥
(शत० ८ । १ । ६ । ७) ॥ ते चित्याः ॥ २ ॥ अग्निः । सोमः । सविता ।
सरस्वती । पूषा । मरुतः । द्यावापृथिव्यौ । इत्येते देवाः संहिता विश्वेदेवाः ।
ते ऋतव्याः ॥ ३ ॥

(३) (३) अग्निः सोमो विष्णुः मित्रावरुणौ—इत्येते वा सयुजः सन्तो विश्वे-
देवा नाम ॥ १ ॥ इन्द्राग्नी । मित्रावरुणौ । नासत्यौ । भगपूषणौ । विष्णुः ।
मारुतः । रुद्रः । गौः । सरस्वतो । इत्येते वा सयुजो विश्वेदेवाः ॥ २ ॥
इन्द्राग्नी । मित्रावरुणौ । भगपूषणौ । विष्णुः । सविता । ब्रह्मणस्पतिः ।
मरुतः । पर्वतः । आपः । द्यावापृथिवी—इत्येते वा सयुजो विश्वेदेवाः ॥ ३ ॥
अन्येऽप्येवं विजातीयाः कतिचिद्देवाः संवर्गीकरणादेकभाविताः सन्तो विश्वे-
देवा उच्यन्ते । तेषां चान्यत्रान्यत्र सृष्टावुपयोगः । तथा च श्रूयते—“प्रजा-
पतिः प्रजा असृजत ॥ ता वैश्वदेवेनैवासृजत । तस्मादिमा वैश्वदेवीः प्रजाः ।
स्तोका वै विश्वेदेवाः ॥” (मैत्रि० १ । १० । ६) ॥ (४ । ७ । १) ॥ इति ॥
तेऽग्नी सगर्ग्याः स्तोका वाभिधेयाः । तदित्थं सजातीयानां विजातीयानां वा ।
देवानामावापोद्वापाभ्यां कृतः संघो विश्वेदेवाः ॥

(४) (४) क्रतुर्दत्तो, वसुः, सत्यः, कालकामौ, धुरिलोचनौ ॥ पुरुरवो माद्रवसौ
विश्वेदेवाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥ इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दत्तो वसुः सत्यश्च दैविके ।
कालः कामोऽग्निकायेषु काम्येषु धुरिलोचनौ ॥ २ ॥ पुरुरवो आर्द्रवाश्च
पार्वणेषु नियुज्यते । पुरुरवो माद्रवसौ विश्वेदेवा इति स्थितिः ॥ ३ ॥
दैविकं वृद्धिश्राद्धम् ॥ अग्निकार्यं सपिण्डीकरणम् । काम्यं काम्यश्राद्धम् ।
पार्वणं पार्वणश्राद्धम् । इति स्मार्त्ता विश्वेदेवाः ॥

मरुतो देवाः

- (१) मरुतो ह वै देवविशोऽन्तरिक्षभाजनाः । ते चैते मरुतस्त्रिविधाः—ऐन्द्राः, सौम्याः, वारुणाश्च । तानेतान् क्रमेण नरो नियुतः पारावता इत्याहुः । नरः सुदानवः । नरो वै देवानां ग्रामः । इति ताण्ड्यम् । ६ । ६ । २ ॥ पृथ्निमातरो घृतानमारुता धर्मसुव इति नरादीनां नामान्तराणि ॥ प्रथमा रोदस्यां द्वितीयास्तृतीयाश्च क्रन्दस्यामुपपद्यन्ते । प्रत्येकं सप्तकाः सप्तगणा भवन्ति ।
- (२) पृथ्वीमारभ्य सूर्य्यपर्य्यन्तं विततो वाणो यज्ञौपशम् ॥ सेन्द्रप्रतिष्ठा ॥ तत्रेन्द्रसहचारित्वादैनद्राणां रुद्रपुत्राणां नृणां नामान्याह भगवान् बसिष्ठो महर्षिर्ऋक्संहितायाम्—७ । ५६ । ५६ ॥ तुविष्मान् । शुभ्रः । शुष्मः । क्रुध्मी । धुनिः । असुरः । विधर्ता—इति ॥ तुविष्मन्तं तविषीयुमाह पुनर्वत्सः काण्वः । अथ प्रतिगणं चैषां सप्तानां सप्तानां नामान्याह तुर्वसिष्ठकाण्वौ ॥
- (३) १ वातस्वनसः । येष्ठाः । शोभिष्ठाः । संमिश्रताः उग्राः । इष्मिणः । ऋतसापः—इति प्रथमाः ॥ ७ । ५६ ॥ २ बुध्न्याः । प्रयज्यवः । गृहमेधाः । स्वञ्चः । प्रक्रीडिनः । दशस्यन्नः । वरिवस्यन्नः—इति द्वितीयाः ॥ ७ । ५६ ॥ ३ मध्वः । पिप्रियाणाः । विश्वपिशः । पिशानाः । उपस्तुताः । आस्तुताः । शतिनः । इति तृतीयाः ॥ ७ । ५७ ॥ ४ तुविमन्यवः । धूतयः । प्रघास्याः । तुराः । भीमासः । अयासः । सस्वार्ताः । इति चतुर्थाः ॥ ७ । ५८ ॥ ५ घृष्ट्विराधसः । अस्नेधन्तः । हंसाः । नीलपृष्ठाः । सान्तपनाः । गृहमेधाः । स्वतवसः । इति पञ्चमाः ॥ ७ । ५९ ॥ ६ पर्वताः । सिन्धवः । अरुणप्सवः । ऋभुक्षणाः । पृन्नयः । सुम्नायन्तः । प्रचेतसः—इति षष्ठाः ॥ ८ । ७ । १ । १७ ॥ ७ वृक्तबर्हिषः । अभिद्यवः । हिरण्यवाश्यः । प्रयज्यवः । चित्रवाजाः । पर्शानाः । अक्षण्यावानः—इति सप्तमाः ॥ ८ । ७ । २०—३५ ॥ १ तेषामेषां सांतपनाः, गृहमेधाः, प्रक्रीडिनः, प्रघास्याः, स्वतवसः, प्रयज्यवः,

ऋभुक्षणः—इत्येते प्रसिद्धाः । सप्त मरुतो भवन्ति ॥ इन्द्रप्रियतम-
त्वात् ॥

२ इन्द्रो वै मरुतः सांतपनाः । इन्द्रो वै मरुतः क्रीडिनः ॥ गो० उ० १ ।
२३ ॥ इत्येवं हि श्रुतयो भवन्ति ॥

(४) अथ क्रन्दस्यां पारमेष्ठ्यमण्डले सौम्या औदुम्बरीसहचारिणो मरुतो द्युतानमा-
रुताः स्युः । समुद्रस्य हृदये वरुणः प्रतितिष्ठति । पृथ्वीमारभ्य वरुणपर्यन्तं
प्रतायमानो यो बाणः स उदुम्बरः । उदुम्बरपर्वानुगता वायुप्रभेदा द्युतान-
मारुताः स्युः । तेषां सप्तगणानां नियुतां नामान्याह । भगवानात्रेयः, श्या-
वाश्च ; ५ । ५२ । तविषीमान् तविषो वा । त्वेष रथस्त्वेषो वा । तवसः ।
खादिहस्तः । धुनिप्रतो धुनिर्वा । मायी । दातिवारः—इति ॥ अथ प्रतिगणं
चैषां सप्तानां नामान्याह—

- (५) १ ऋकानः । धृषद्विनः । स्पन्द्राः । नोक्षणः । अर्हन्तः । ऋष्वाऋष्टिबि-
द्युतः । शुन्ध्यवः—इति प्रथमाः ॥ (५ । ५२ । १—६)
२ आपथयः । विपथयः । अन्नस्पथाः । अनुपथाः । छन्दःस्तुभः । कुभन्यवः ।
कीरिणः—इति द्वितीयाः ॥ (५ । ५२ । १०)
३ कवयः । वेधसः । शिक्कसः । अरेपसः । जीरदानवः । तवृदानाः । भोजाः—
इति तृतीयाः ॥ (५ । ५३ । १—१६)
४ स्वभानवः । धर्मस्तुभः । पृष्ठयज्वानः । द्युम्नश्रवसः । परिश्रयः ।
अरुषाः । सुवृधः ॥ इति चतुर्थाः ॥ (५ । ५४ । १)
५ विद्युन्महसः । अश्मदिद्यवः । वातत्विषः । पर्वतच्युतः । ह्लादनीवृतः ।
रभसाः । उदोजसः । इति पंचमाः ॥ (५ । ५४ । ३)
६ नियुत्वन्तः । ग्रामजितः । कवन्धिनः । मध्वः । सभरसः । ऋतायवः ।
विचेतसः—इति षष्ठाः ॥ (५ । ५४ । ८—१३)
७ प्रयज्यवः । भ्राजदृष्टयः । विरोकिणः । तुविराधसः । उदवाहाः । उपमाः ।
रभिष्ठाः—इति सप्तमाः (५ । ५५ । १—३ । ५ । ५८ । २—५)
(६) अथ क्रन्दस्यामेव पारमेष्ठ्यमण्डले वारुणामरुतो धर्मसुवो नाम ॥ तेषां
नामानि ब्राह्मणेष्वारण्यकेषु कानिचिदृश्यन्ते ॥ (तैत्तिरीयारण्यकेषु)
(७) १ ईदृक् । अन्यादृक् । एतादृक् । प्रतिदृक् । मितः । संमितः । सभराः—
इति प्रथमाः ॥

२

३

४ धुनिः । ध्वान्तः । ध्वनः । ध्वनयन् । निलिम्पः । विलिम्पः । विक्षिपः --इति चतुर्थाः ॥ ५ ऋतः । सत्यः । ध्रुवः । धरुणः । धर्त्ता । विधर्त्ता । विधारयः --इति पञ्चमाः ॥ (मै० सं० २ । ६ । ६)

६ ऋतजित् । सत्यजित् । सेनजित् । सुषेणः । अन्तिमित्रः । दूरेऽमित्रः । गणः --इति षष्ठाः ॥ (मै० सं० २ । ६ । ६)

७ शुक्रज्योतिः । चित्रज्योतिः । सत्यज्योतिः । ज्योतिष्मान् । सत्यः । ऋतपाः --अत्यंहाः ॥ इति सप्तमाः ॥ (तै० सं० १ । ८ । १३)

(८) अथ मरोच्यादयः स्मार्त्ता मरुतः पौराणिकैः स्मर्यन्ते ॥

साध्या देवाः

इमे वाव लोका यत् साध्यादेवाः --इति गोपथश्रुतिः ॥ २ । ८ ॥

साध्या--मन्ता मनः प्राणोऽपानो विश्वोऽथ वीर्यवान्

नरो नारायणो हंसः प्रभवो निर्भयो नयः १

मन्ताऽनुमन्ता वा । अपानो नरयानो वा । विश्वो वृषो वा । प्रभवः प्रभुर्वा ।

इति पौराणिकाः ॥

आप्त्याः देवाः

एकतो द्वितस्त्रित इत्याप्त्याः ॥ आप्या आप्या आत्म्या --इत्येकोः ॥ तेऽमी देवानां दिक्पाला भवन्ति । तथा च श्रूयते --“अथैते दैवा आशापालाः --आप्त्याः साध्या अन्वाध्या मरुतः” --(श० १३ । २ । १६--१५) इति ॥

ऋभवो देवाः

ऋभुः, विभ्वा, वाजः --इति त्रयोऽमी ऋभवः ॥ तेषां प्रथमोत्तमाभ्यां बहुवन्निगमा भवन्ति न मध्यमेन ॥

देविकाश्चतस्रः

राका । अनुमतिः । सिनीवाली । कुहूः --इति चतस्रो देविकाः । कलाहीनचन्द्रा पूर्णमासी --अनुमतिः । पूर्णचन्द्रा राका । दृष्टचन्द्राऽमावास्या सिनीवाली । नष्टचन्द्रा कुहूः ॥ या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिः । योत्तरा सा राका ॥ या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः ॥ चन्द्रमा एव धाता च विधाता च (गोप० १ । १०) ॥

यो धाता, स वषट्कारः म सूर्यः ॥ याऽनुमतिः सा गायत्री सा शौः । या राका
सा त्रिष्टुप् । सा उषाः ॥ या सिनीवाली सा जगती सा गौः ॥ या कुङ्कुः साऽनुष्टुप् सा
पृथिवी ॥ या इमास्ता अमूः । या अमूस्ता इमाः ॥ ऐत० ॥

देवपत्न्यः

(१) पृथिव्यग्नेः^१ पत्नी । वाग्^२ वातस्य । वागिन्द्रस्येत्येके^३ सेनेन्द्रस्येत्येके^४ । धेना^५
बृहस्पतेः^६ । पथ्या पूष्णः^७ । गायत्री वसूनाम्^८ । त्रिष्टुब्^९ रुद्राणाम् । जगती^{१०}
आदित्यानाम् । अनुष्टुब्^{११} मित्रस्य । विराड्^{१२} वरुणस्य । पंक्तिर्विष्णोः^{१३} । दीक्षा^{१४}
सोमस्य ॥ इत्येता द्वादश देवपत्न्यः (गोप० २ । ६५) ॥

(२) अग्नायी अग्नेः^१ । इन्द्राणोन्द्रस्य^२ । वरुणानो वरुणस्य^३ । रोदसी रुद्रस्य^४ ।
अश्विन्यश्विनोः^५ इत्येवमाद्या देवपत्न्यः (ऋ० सं० ४ । २ । २८ । ८) ॥

(३) इन्द्रस्य सुनीतिः^१ । सोमस्य स्वस्तिः^२ । वरुणस्य समीची^३ ॥ यमस्य प्रमृ-
णापः^४ । जातवेदसो भूर्जयन्ती ॥ इत्यपि श्रूयते ॥

देवस्त्रियः

अदितिः^१ । पथ्या स्वर्गितः^२ । पृथिवी^३ । सार्षपाक्षी^४ । सरमा^५ । यमी^६ । उर्वशी^७ ।
जुहूर्ब्रह्मजाया^८ । श्रद्धा^९ । रात्रिः^{१०} । उषाः^{११} । सूर्याः^{१२} । सरण्यूः^{१३} । वृषाकपायी^{१४} ।
भारती^{१५} । इडा^{१६} । सरस्वती^{१७} । वाक्^{१८} । गौरी^{१९} । गौः^{२०} । धेनुः^{२१} । अज्या^{२२} । अन्वा^{२३} ।
निऋतिः^{२४} ॥ इत्येता देवस्त्रियश्चतुर्विंशतिः ॥ २४ ॥

इति तृतीयः पाठः ॥ ३ ॥

ऋषयः

ऋषिरिति यजुर्मन्त्राणां संज्ञा । यजुरिति प्रचरतो द्विभक्तिकस्य ब्रह्मणः संज्ञा ।
एकैकस्य यजुषो मन्त्रस्य द्वे भक्ती भवतो यच्च जूश्चेति । गतिप्रकृतिकममृतं ब्रह्म

यत् । स प्राणः, स वायुः । स्थितिप्रकृतिकममृतं ब्रह्म जूः । सा वाक् । स आकाशः । बलप्राणः संचरन् वायुरुच्यते ॥ सत्या हीयं वागवच्छेदानपेक्षायां विभुः सत्याकाशो व्यपदिश्यते । तावेतौ वाक्प्राणावाकाशवायू अन्योन्यमविनाभूतौ भवतः । तदुभयमेको- भूतं यजुः स ऋषिः । स वाङ्मयः प्राणो वा, आकाशमया वायुर्वा प्रतिपत्तव्यः ॥

ब्रह्मसृष्टं जगत् । ब्रह्मदृष्टं विज्ञानम् । ब्रह्म वा आत्मा ब्राह्मणः । त्रयाणामेषां ब्रह्मणां यत् उपक्रमः स ऋषिः । यत्र ध्रुवे ब्रह्मणि प्रथमा प्रवृत्तिक्रिया स ऋषिः । जगत्- सृष्टेर्वा विज्ञानदृष्टेर्वा ब्रह्मगोत्रस्य वा यदुपज्ञं प्रवृत्तिः स ऋषिः । गोत्रं वंशपरम्परा- गिरिः । तथा चायमृषिस्त्रिविधः—सृष्टिप्रवर्त्तकः, वेदप्रवर्त्तकः, गोत्रप्रवर्त्तकश्चेति ॥

तत्र सृष्टिप्रवर्त्तकानां त्रिविधा वर्गा भवन्ति । एकर्षयः, सप्तर्षयो, दशर्षयश्चेति । असङ्गस्वाभाव्यादन्यैरसंसृज्यमानाः केचिदेकर्षयः स्युः । येषां तु सप्त सप्तैव सहकृता- स्तिष्ठन्ति न न्यूनाधिकतामायान्ति ते सप्तर्षयः । ते चानेकधा संसृज्यन्ते । तद्यथा— अग्निविधाः, साकंजविधाः, गोविधाः, स्वसृविधाश्च ॥ चत्वार आत्मा द्वौ पक्षौ पुच्छ- मेकमित्येकः क्रमः । सोऽग्निविधः ॥ १ ॥—“साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षड्विधा ऋषया देवजा इति । तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः”—॥ इत्यन्यः क्रमः । स साकंजविधः ॥ २ ॥ कालधूमलशोणा हिरण्यपीतहरितनीलानां सूर्य- रश्मौ संनिवेशवदन्यः क्रमः । स गोविधः ॥ ३ ॥ सप्तस्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे । इति छन्दसामिवान्यः क्रमः । स स्वसृविधः ॥ ४ ॥ अथ येषां पुनरेको द्वौ त्रयो बहवा वा समस्ता व्यस्ता यथासंभवमिलिता वा संयुज्यन्ते अपि च—आवा- पोद्वापाभ्यां रूपान्तरतामापद्यन्ते ते दशर्षयः स्युः । ते वैराजाः—उच्यन्ते ॥

परमेष्ठो विष्णुर्यज्ञः । तमागतऋषिर्विराड् भवति । दशाक्षरा विराट् । वैराजो मनुः । स मनुरेतान् दशर्षीनुद्भावयति ॥—भृग्वङ्गिरसौ ॥ अत्रिमरीची । पुलस्त्य- पुलहौ । क्रतुदक्षौ ॥ वसिष्ठागस्त्यौ चेति ॥ शुनकजमदग्नौ भृगुभेदौ । अथर्वा । दध्यङ् । कण्वः । घोरः । अयास्यः । गातमः । वामदेवः । भरद्वाजः । उचध्यः । बृहस्पतिः । संवर्तः । इत्येवमादय एकविंशिनोऽङ्गिरसः । अनन्तविधा वा अङ्गिरसः । तथा च श्रूयते—“विरूपास इद् ऋषयः त इद्गम्भीरवेपसः । ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परिजङ्गिरे । १० । ६२ । ५ । ये अग्नेः परिजङ्गिरे विरूपासो दिवस्परि ॥ नवग्वो नु दशग्वो अङ्गरस्तमः स चा देवेषु मंहते १० । ६२ । ६ इति ॥”

अथ ये ये विद्वांसस्तानेतानृषीनपश्यन्—ते ते विद्वांसोऽपि तत्तद्ब्रह्मनान्मैव व्यपदिष्टा अभवन् । भृगुः, अङ्गिराः, अत्रिः, वसिष्ठ इत्यादयः । जमदग्निः, गोतमो

भरद्वाज इत्यादयः ॥ ये तावदेते प्राणा ऋषयस्ते मन्त्रास्तानि ब्रह्माणि ते वेदाः । तानि विज्ञानानि । विज्ञानान्येव वेदाः । वेदप्रवर्तका एवैते ऋषयो मन्त्रद्रष्टार इत्याहुः ॥ स योऽयमेकर्षिर्भगवान् प्रजापतिः, ये वा सप्तर्षयो ये दशर्षयो ये वा तद्वंशधरा ब्राह्मणास्ते होमे वेदप्रवर्तका ऋषयः । तत एव हि प्राणानां विज्ञानानि सर्वाणि प्रवृत्तानीति विद्यात् ॥

ये चैते प्रथमा मन्त्रद्रष्टारो ब्राह्मणा बभूवुस्ते नूनं तेन तेन ब्रह्मणैव कृतात्मान आसन् ॥ तत्तदात्मानुस्रवादेव च तत्तदपत्यपरम्परायामपि सर्वेषां संतानानामात्मानस्तेन तेनैव ब्रह्मणा कृतरूपा अभवन् ॥ एकैकस्य ब्राह्मणस्य ऋषेरात्मनि य ऋषिप्राणस्तस्योत्तरमुत्तरं ब्रह्म संतानेष्वनुस्रवो गोत्रम् । ऋषिभेदाच्च तान्येवैतेषां ब्राह्मणानामिमानि सप्तैव गोत्राणि ॥ तदवान्तरभेदाद्बहूनि वा गोत्राण्येति प्रतिपत्तव्यम् ॥

भृग्वङ्गिरसः

वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः । अग्निरादित्या यम इत्येतेऽङ्गिरसः । विश्वेदेवा ऋक्कानः । पौराणिकानां शुक्रतारागता भृगवः प्राणा द्वादश ॥—भुवनः, भावनः, सुजन्यः, सुजनः, ऋतुः, सुवः, स्वसुः, व्यजः, व्यमुनः, प्रसवः, अव्ययः, दक्षः—इति ॥ अथ बृहस्पतितारागताः—अङ्गिरसः प्राणा दश । आत्मा, आयुः, मनः, दक्षः, परप्राणः, हविष्यः, गविष्ठः, ऋतः, सत्यः, तैजस इति भविष्योत्तरे ॥ एतेषां च रूपकर्मविज्ञानानि कालातिपातान्नोपलभ्यन्ते ॥

अथर्वाणः

भृगवश्चाङ्गिरसश्चाथर्वा चेत्यथर्वाणः ॥ भृग्वङ्गिरोभ्योऽतिरिच्यतेऽथर्वा ॥ अथर्वाभ्यस्तु नातिरिच्यन्ते भृग्वङ्गिरसः ॥

पितृकल्पे पितृदेवाः

अग्निः, यमः, सोमः—इत्येते पितॄणां वर्गविभाजका देवाः ॥ आग्नेयाः, पितरा, याम्याः पितरः, सौम्याः पितरश्च भिद्यन्ते ॥ ऊर्वाः, अवमाः, काव्याः, इत्येताः पितॄणां जातयः ॥ विश्वेदेवाः, अङ्गिरसः, भृगवः, इत्येते पितॄणां गणभेदाः ॥ बृहस्पतिः, यमः, मातली—इत्येते पितॄणां सहचारिणो देवाः ॥ मातलीदेवः काव्यैः, यमोऽङ्गिरोभिः, बृहस्पतिर्विश्वेदेवैः, सह संचरतीति तैत्तिरीयसंहितायाम् ॥ २ । ६ । १२ ॥

अमूर्तास्त्रयो दिव्यपितरः

परा मध्यमा अवराश्चेति त्रिविधाः सर्वे पितरो भवन्ति । देवपितरः, ऋतु-

पितरः, प्रेतपितरः, इत्येवं ते पितरस्त्रेधा विभक्ता नेयाः । परा मध्यमा अवरा—
इत्येवं त्रिविधा दिव्यपितरः क्रमेण सोमसदो बर्हिषदोऽग्निष्वात्ता इत्युच्यन्ते । तेषा-
मेषां क्रमेण सोमो यमोऽग्निरित्येते त्रयो देवाः । अत्रिः अङ्गिरा भृगुरित्यमी ऋषयः ।
पितृमन्तः, अङ्गिरस्वन्तः, कव्यवाह इत्यार्षेयाः । अत्र्यङ्गिरोभृगुभिः संपरिष्वक्तानां
सोमयमाग्नीनामेवेदं पितृत्वमुपकल्पते । तथा चात्रेः सोमपितृत्वात् पितृमन्तं सोमं
पितृशब्देनाहुः । अथैषां सनातनाः संतानका वा । सोमपथाः सोमपदा वा । वैभ्राजाः
विभ्राजमाना वा लोकाः । उत्तरा अन्तरा दक्षिणा चैषां दिशः स्युः । शीताः, शीतोष्णा
उष्णाश्चैषां प्रकृतयः । साध्यानां देवयोनीनां देवानां चैते विशेषतो जनका भवन्ति ॥

| | | | | | | | | | |
|-------------------------------|-------------------------|---|---|------------------------------|-----------------------|---------------------------------|--|-------------------------------|------------------------------|
| साध्याः देवयोनीयः देवाः | पराः मध्यमा अवराः | सोमसदः बर्हिषदः अग्नि- ष्वात्ताः | पितृमन्तः अङ्गिरस्वन्तः कव्य- वाहनाः | अत्र्यः अङ्गिरसः भृगवः | सोमः यमः अग्निः | सनातनाः सोमपथाः वैभ्राजाः | संतानकाः सोमपदाः विभ्राज- मानाः | उत्तरा अन्तराः दक्षिणाः | शीताः शीतोष्णाः उष्णाः |
| प्रजननीयाः | अवकाशाः | नामानि | आर्षेयाः | ऋषयः | देवाः | लोकाः | लोकाः | दिशः | प्रकृतयः |
| ६ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ६ | ८ | ६ |

मूर्ताश्चत्वारो दिव्यपितरः

अमूर्तास्तयो दिव्यपितरोऽमी आख्याताः । अथ मूर्तिमन्तो दिव्यपितरश्चत्वारो
भवन्ति । सोमपा हविर्भुजः, आज्यपाः, सुकालिनश्चेति । सोमवन्तः, हविष्मन्तः
सुस्वधासुकालाः—इत्येतेषामन्यानि नामानि ॥ काव्या वैराजा वा सोमपाः । अङ्गि-
रसाः पौलहा वा हविर्भुजः । पौलस्त्याः कादमा वा आज्यपाः । वासिष्ठाः, सुका-
लिनः । तेषामेषां चतुर्णां ज्योतिर्भासा, मारीचाः, तेजस्विनः, मानसाः—इत्येते
क्रमेण लोकाः स्युः ॥ ते चैते पितरः क्रमेण ब्राह्मणानामाग्नेयानां क्षत्रियाणामैन्द्राणां
वैश्यानां वैश्वदेव्यानां शूद्राणां पौष्णानां जनका भवन्ति ॥

| पितृणां नामानि | पितृणां लक्षणानि | पितृणां ऋषयो योनयः | पितृणां लोकाः | पितृणां प्रजननीयाः |
|--|--|--|---|---|
| सोमपाः हविर्भुजः आज्यपाः सुकालिनः | सोमवन्तः हविष्मन्तः सुस्वधा सुकालाः | काव्या वैराजा वा अङ्गिरसाः पौलहा वा पौलस्त्याः कादमा वा वासिष्ठाः | ज्योतिर्भासाः मारीचाः तेजस्विनः मानसाः | ब्राह्मणानामाग्नेयानाम् क्षत्रियाणामैन्द्राणाम् वैश्यानां वैश्वदेव्यानाम् शूद्राणां पौष्णानाम् |
| | | | | |

अथर्वणामतिरिक्तपितृत्वाभावः

ननु—“अजीजनो हि वरुणस्वधावन् अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्” ॥ ० । ० ॥

इत्यथर्वमन्त्रेऽथर्वाणो नामान्ये पितरः श्रूयन्ते—इति चेत्तत्र ब्रूमः—नैतेऽथर्वाणो भृगुभ्योऽतिरिच्यन्ते । व्यपदेशसामान्याद् जनकसामान्यादयोनिसामान्याच्च । भृग्वङ्गिरस एवाथर्वाङ्गिरस इत्येवमभेदेन व्यपदिश्यन्ते । भृगुर्वारुणिरथर्वाऽप्ययं वारुणिरित्येकत्वं संभाव्यते । भृगोरेव शरीराच्चतुर्णां वायूनामुत्थाने परिशिष्येण भृगोरथर्वत्वमाथर्वणिका आमनन्ति । तस्माद् भृगव एवैतेऽथर्वाणः सिध्यन्तीति नातिरिक्तोऽर्थः । ननु भृगवथर्वणोरेकत्वे—“अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः”—इति मन्त्रे भृगूणामथर्वणां च पृथक्त्वेनोपादानं विरुध्यते । इति चेन्न । भृगुविशेषणतयैवाथर्वाणां तत्रोपात्तत्वात् । अथर्वलक्षणानामेव भृगूणां तत्र विवक्षितत्वात् ॥ अथवा सन्तु सर्वविधा भृगवस्तत्र विवक्षिताः । ब्राह्मणवसिष्ठन्यायेन तत्र भृगुविशेषाणामथर्वणां भृगुसामान्यतः पृथक्त्वेनोपादानादविरोधात् । ननु—“ब्रह्मा देवानां प्रथमः संवभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह”—इति मन्त्रेऽथर्वणो ब्रह्मपुत्रत्वमाख्यायते । तथा चायं द्विविधोऽथर्वा स्यात् । ब्रह्मपुत्रो वरुणपुत्रश्च । तत्र वारुणे भृगुत्वोपपत्तावपि स ब्रह्मपुत्रोऽन्यः स्यादिति चेन्न । वरुणपुत्रस्य भृगुष्वन्तर्भावाद् ब्रह्मपुत्रस्याङ्गिरस्त्वेवान्तर्भावेणातिरिक्तत्वाभावात् । अथैक एवायमथर्वा स्यात् । वरुणौ रसपुत्रस्यैव ब्रह्मानसपुत्रत्वेनाभ्युपेतत्वात् । सोऽयं भृगुष्वङ्गिरः सु च पर्यायेणान्तर्भाव्यते । तस्मात् सप्तैव ते दिव्यपितरः सिद्धाः ॥

ऋतव्याः पितरः

अथतु पितरो वक्तव्याः । ऋतं च सत्यं चेति सोमं चाग्निं चाहुः । अग्नीषोमौ परस्परव्यासक्तौ संवत्सरस्य रूपम् । सोमकाले दक्षिणामनु सूर्यश्चरति । उत्तरातश्चायं सोमो दक्षिणमनुयाति । अथाग्निं कालेऽयमुत्तरामनु सूर्यश्चरति । दक्षिणतश्चाग्निरुत्तरामनुयाति । अग्निमनु सर्वे देवाः सोमं त्वनु सर्वेऽसुराः । विरुद्धप्रकृतित्वादहर्निशं ते परस्परतो विस्पृहन्ते । तत्रैते देवा वृत्रं जघ्नुः । तेऽमी विजयिनो देवाः वसन्तग्रीष्म-वर्षाः । विजितास्तु पितृयज्ञेन पुनः समैरयन्त । तेऽमी शरद्धेमन्तशिशिराः । त एवामी सोमसदो बर्हिषदो अग्निष्वात्ताः । इह वा यत्रैतयोः—सोमस्याग्नेश्च यजनं वायुना व्याह्रन्ते । बलवतोर्विरुद्धयोर्द्वयोर्विषमः संयोगो भवति स यमः । वैवस्वतः प्राणविशेषो यमः । अग्नियमसोमानां संवत्सरकालं भोगः संवत्सरः । फाल्गुनीमारभ्याषाढी याव-च्चातुर्मास्यं वैश्वदेवपर्व । तौ च वसन्तग्रीष्मावृत्तौ अग्निः । तेऽवराः पितरः ॥ आषाढी-मारभ्य कार्तिकी यावच्चातुर्मास्यं वरुणप्रघासपर्व । तौ च वर्षाशरदावृत्तौ यमः ।

ते मध्यमाः पितरः ॥ कार्तिकीमारभ्य फाल्गुनीं यावच्चातुर्मास्यं साकमेधपर्व । तौ च हेमन्तशिशिरौ—ऋतू सोमः । ते पराः पितरः । तानेतान् चातुर्मास्यपर्वणि पित्र्येष्टौ यजन्ते । सोमायोत्तरतो जुहोति । अग्नये दक्षिणतः । अथैतयोरन्ते यमायेति ॥ तेऽमी अग्नियमसोमाः षड् ऋतवः पितरः । ऋतुभिरेवैषां भूतानामुत्पत्तिरस्तीत्येषां पितृत्वमुपचर्यते । तेषां च त्रेधापक्लृप्तिर्भवति । अहोरात्रे अग्नीषोमौ दिवसः स पिता । पूर्वपक्षापरपक्षौ अग्नीषोमौ मासः स पितामहः । उत्तरायणदक्षिणायने अग्नीषोमौ संवत्सरः स प्रपितामहः ॥

प्रेतपितरः

अथ ये तृतीयाः पितरस्ते मनुष्यपितरः प्रेता उच्यन्ते । सप्त सपिण्डाः पितरः प्रेताः । ते द्वेधा विभज्यन्ते । पिण्डभाजोऽवरा अश्रुमुखा नाम पिण्डलेपभाजस्तु परा नान्दीमुखा नाम । पिता पितामहः प्रपितामहः । इति त्रयः पिण्डभाजः । तेषु सतां सप्त-षट्पञ्चमात्राणां पित्र्याणां सहसामधिकतया पिंडसंभवात् । ते चैते क्रमेण वसुरुद्रादित्यैरग्निभिः सहचारितयाऽग्निलोकस्था स्युः । वसवोऽवराः । रुद्रा मध्यमा आदित्याः पराः स्युः । अथ येऽत ऊर्ध्वं चत्वारस्ते लेपभाजो द्रष्टव्याः । चतुस्त्रिद्वयकमात्राणां पित्र्याणां सहसामत्यल्पतया तेषु पिण्डरचनाया असंभाव्यमानत्वात् ॥ ते चैते पुनरा-ज्यैर्विश्वैर्देवैः सहचारितया सोमलोकस्थाः स्युः । “ये वैके चास्माल्लोकात् प्रयन्ति चंद्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्तीति कौषीतकिश्रुतौ श्रूयते ॥”

यस्मिन् वा ऋतौ पुरुषः प्रमीयते सोऽस्यामुष्मिन् लोके भवति यदि वसन्ता प्रमीयते वसन्तो भवति । यदि ग्रीष्मे ग्रीष्मः ॥ संवत्सरो वै सोमः पितृमान् । मासा वै पितरो बर्हिषदः । अर्धमासा वै पितरोऽग्निष्वात्ताः ॥ तै० ब्रा० १ । ६ । ८ ॥

अपि चाहुः संवत्सरो वै सोमः पितृमान् । ये वै यज्वानस्ते पितरो बर्हिषदः । ये वा अयज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरोऽग्निष्वात्ताः ॥ तै० ब्रा० १ । ६ । ६ ॥

उपक्षिताः पितरः

कव्यवालोऽनलः सोमो यमश्चैवाय्यमा तथा ॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः ॥ १ ॥

इति वचनादष्टौ पितर इति केचिदाहुस्तदसत् अत्र वचने त्रयाणामेव पितृणा-मुपदिश्यमानत्वात् । तथा हि—कव्यवाहोऽनल इति वा कव्यवाडनल इति वा वक्तव्ये कव्यवाल इत्येवं तावत् प्रामादिकः पाठः । काव्यवाट्त्वं चाग्नेर्विशेषणं भवति ॥ अय्यमा

चायं न यमादतिरिच्यते । तेषां चाग्नियमसोमानां देवानां सतामिह अग्निष्वात्तादिभिर-
भेदेन पितृव्यपदेशो विधीयते । तथा चेह त्रय एवैते पितरो वाक्यार्थः ।

अथ नागरखण्डे स्कान्दे रश्मिपाः, उपहूताः, आयन्तुनः, स्वादुषदः इत्यमी चत्वारः
पितरोऽतिरिक्ताः स्मर्यन्ते ॥ ते चामी प्रक्षिप्तपाठोपक्षिप्तत्वादनादेयाः । उपहूतादीनां
पितृणां श्रुतिषु पुराणेषु चान्यत्रानुपलब्धेः ॥

“उपहूताः पितरो ये मघासु ।” तै० ब्रा० २ । १ । १ ॥

“उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्वेबु निधिषु प्रियेषु ।”

“आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।”

इत्येवं मन्त्रश्रुतौ—आहूता आगच्छन्तु—इत्येवमर्थकपदानामर्थानभिज्ञैर्भ्रान्त्या
तथोपकल्पितत्वादप्रामाण्यम् ॥

अथ विष्णुधर्मोत्तरे—सुभास्वराः, बर्हिषदः, अग्निष्वात्ताः,—इत्यमूर्ताः । एवं
कव्यादाः, उपहूताः, आज्यपाः, सुकालिनः, इति मूर्ताः । इत्थं सप्तगणाः प्रदर्शयन्ते । तत्र
सोमसदः सुभास्वराः । सोमपास्तु कव्यादा इति पर्यायवाचितया नेयाः । हविष्मतां
तूपहूतत्वं पर्यायवाचितयोक्तं भ्रान्तम् ॥

नन्दिपुराणे—अग्निष्वात्ता बर्हिषदः काव्याः सुकालिनो यामाः—इत्येवं बर्हिषदो
भेदेन यामा उच्यन्ते तदप्यज्ञानात् ॥ बर्हिषदामेव यमानुगत्या यामत्वेन प्रतिपत्तव्यत्वा-
दिति बोध्यम् ॥ एवं पुराणान्तरप्रक्षिप्तपाठा अपि यथायथमुपक्षेप्याः ॥

चतुर्दश यमाः

धर्मराजो यमो मृत्युः सर्वभूतक्षयोन्तकः । कालो वैवस्वतो ब्रध्नः परमेष्ठी वृकोदरः ॥
नीलश्रौदुम्बरश्चित्रश्चित्रगुप्त इमे यमाः । अग्नौ हि ते हूयमानं सोमं यच्छन्ति वायवः ॥ २ ॥

नक्षत्रविद्यायां देवनक्षत्राणि

१ कृत्तिका । २ रोहिणी । ३ मृगशीर्षम् । ४ आर्द्रा । ५ पुनर्वसू । ६ पुष्यः । ७ श्लेषा । ८ मघा ।
९ पूर्वेफल्गुन्यौ । १० उत्तरेफल्गुन्यौ । ११ हस्तः । १२ चित्रा । १३ स्वाती । १४ विशाखा । इत्येतानि चतु-
र्दशदेवनक्षत्राणि । तत्रापर्यमाणपक्षान्तः पौर्णमासी ॥

यमनक्षत्राणि

१ अनुराधा । २ ज्येष्ठा । ३ मूलः । ४ पूर्वे अषाढे । ५ उत्तरे अषाढे । ६ अभिजित् । ७ श्रवणः ।

(२१)

८ धनिष्ठा । शतभिषक् । १० पूर्वे प्रोष्ठपदे । ११ उत्तरे प्रोष्ठपदे । १२ रेवती । १३ अश्विनी । १४ भरणी ।
इत्येतानि चतुर्दश यमनक्षत्राणि । तत्रापक्षीयमाणपक्षान्तः । साऽम्बावास्या ॥ देवनक्ष-
त्राणि दक्षिणेन परियन्ति, यमनक्षत्राण्युत्तरेण ॥ तदित्यमेतान्यष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि ॥

पर्यायशब्दाः

अम्बा । दुला । नितलो । भ्रमयन्ती । मेघयन्ती । वर्षयन्ती । चुपुणीका—इत्ये-
तासां सप्ततारकाणां कृत्तिकेति साधारणं नाम ॥

२ रोहिण्यो वा रोहिणी वा । ३ मृगशिरा इन्वका इल्वला वा । ४ आर्द्रा बाहुर्वा ।
५ पुष्यस्तिष्यो वा । ६ श्लेषा आश्लेषा वा । १३ स्वाती निष्ठया वा । १६ ज्येष्ठा रोहिण्या रोहिणी
वा । १७ मूला मूलबहिणी वा । २१ श्रौणा श्रवणा वा । २२ धनिष्ठा अविष्ठा वा । प्रोष्ठपदे
भाद्रपदे वा । २७ अश्विनी आश्वयुजी वा ॥ २८ भरणी अपभरणी वा—इति केषांचिन्नक्षत्राणां
पर्यायवाचिनः शब्दाः ॥

नक्षत्रदेवताः

१ अग्निः । २ धाता प्रजापतिः । ३ चन्द्रो मरुतो वा । ४ रुद्रः । ५ अदितिः । ६ बृहस्पतिः । ७ सर्पाः ।
८ पितरः । ९ अयमा तैत्तिरीयाणां भगोऽन्येषाम् । भगस्तैत्तिरीयाणामर्थ्यमान्येषाम् । ११ सविता ।
१२ त्वष्टा । १३ कौशिकेन्द्रो वा । वायुः । १४ इन्द्राग्नी । मित्रः । १५ इन्द्रो वरुणो वा । १६ निऋतिः
१८ प्रजापतिर्वा । १९ आपः । २० विश्वेदेवाः । ब्रह्मा । २१ विष्णुः । २२ वसवः । २३ वरुण इन्द्रो वा ।
२४ अजएकपाद् अहिबुध्न्यो वा । अहिबुध्न्यो अजएकपाद्वा । २५ पूषा । २६ अश्विनौ । २८ यमः ।
इत्यष्टाविंशतिर्नाक्षत्रिकदैवतानि ॥

नाक्षत्रिकेष्टिसिद्ध्यः

अत्रादत्त्वं कृत्तिकायाम् । १ । प्रियोपावर्तनप्रियसंगमौ रोहिण्याम् । २ । समा-
नानां राज्यमभिजयतीति मृगशीर्षिण । ३ । पशव आर्द्रायाम् । ४ । भूतिप्रजात्योः
पुनर्वस्वोः प्रजापशुलाभः । ५ । पुष्ये ब्रह्मवर्चसलाभः । ८ । फाल्गुनीनां पूर्वयोः

पेशाव उत्तरयोः श्रैष्ठ्यम् । १० । हस्ते श्रद्धेयत्वसवितृत्वे । ११ । चित्रायां चित्रप्रजा-
लाभः । १२ । स्वात्यां कामचाराभिजयः । १३ । विशाखयोः समानेषु श्रैष्ठ्याभि-
जयः । १४ । अनुराधायां मित्रधेयाभिजयः । १५ । ज्येष्ठायां ज्यैष्ठ्याभिजयः । १६ ।
मूले प्रजा । १७ । अषाढानां पूर्वयोः समुद्रकामाभिजयः । उत्तरयोरनपजय्यजितिः । १८ ।
अभिजिति ब्रह्मलोकाभिजयः । २० । श्रवणायां पापकीर्तिनिरासः पुण्यश्लोक-
श्रवणं च । २१ । धनिष्ठायां समानामग्रं पर्येति । २२ । शतभिषज्यशैथिल्य-
दृढत्वे । २३ । प्रोष्ठपदानां पूर्वयोर्ब्रह्मवर्चसतेजः । उत्तरयोः प्रतिष्ठालाभः । २४ ।
पशुलाभो रेवत्याम् । २५ । अश्विन्यामन्नाधिर्यदीर्घश्रुत्वे । २६ । भरण्यां समानानां
राज्यमभिजयति ॥ २८ ॥

स्थिरचतुःस्वस्तिकानि

एषां नक्षत्राणां चत्वारि नक्षत्राणि नवत्यंशान्तरितानि चतुःस्वस्तिकान्याख्यायन्ते ।
चित्रारेवत्यौ श्रवणापुष्यौ चेति । तथा च मन्त्रः श्रूयते—“स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु”
इति । वृद्धश्रवा इति चित्रास्थं बृहत्कर्णं कौशिकपद्याकृतिमिन्द्रमाह । तेनेतरा दिविष्ठा
इन्द्रतारा व्यावर्त्यन्ते ॥ विश्ववेदा इति ज्योतिश्चक्रप्राथम्यं रेवत्या आह । पूषणो
हि तारामारभ्य विश्वं ज्योतिश्चक्रं विदन्तीति स विश्ववेदा उक्तः । अनेन सूर्य्यपृथ्वी-
पशूनां पूषणां व्यावृत्तिः ॥ अथ त्रयाणामृक्षाणां समाहारस्तृक्षम् । तृक्षशब्दवदिह
यलोपशब्दान्दसः । तृक्षे क्लृप्तः सुपर्णस्तार्क्ष्यः । स हि श्रवणापतिविष्णुरथः । स च
पक्षी अरिष्टाख्यस्य ग्रहसंचारप्रदेशस्याष्टाचत्वारिंशदंशव्याप्तिकस्य प्रान्तेऽस्तीत्यरिष्ट-
नेमिरुच्यते । अथाद्यत्वे लुब्धकबन्धुनाम्ना प्रसिद्धा पुनर्वसुपुष्यगता तारा
बृहस्पतिर्नामोपपद्यते । स च पारमेष्ठ्यमण्डलस्थात् सूर्य्यमण्डलस्थाच्च बृहस्पतेरति-
रिच्यते ॥ तैरेतैश्चतुर्भिः स्वस्तिकैः सर्वमिदं व्योममण्डलं चतुर्धा विभज्यते व्य-
हारार्थम् ॥

पथ्यास्वस्तिः

“एष वा अपरिपरः पन्था अरक्षस्यो येनासा आदित्य एति ।” इति मैत्रिश्रुति-
बोधिते ४ । ८ । ५ ॥ यस्मिन् पथि सूर्य्यः परिक्रममाणो दृश्यते सोऽयमस्याः परिभ्रमन्त्याः
पृथिव्याः पन्था भवति । तत्र चत्वारश्चरस्वस्तिका उपपद्यन्ते । तस्मिन् पथि यत्र यत्र
विषुवसंगरो भवति तत्र तत्रायं सूर्य्यः पृथिव्या उपरिष्ठादधिक्रमते वा अधस्तादपक्रमते
वा ॥ उत्तरगोलं दक्षिणगोलं वा गतो भवति । ते द्वे विषुवदहनी उच्येते । तयोश्चायं

सूर्यो यत उत्तरगोलमायाति तद्दिवाकीर्त्यं नामाहः । अथ यत्रायं सूर्योऽतितमा-
मुत्तरां गतो भवति दक्षिणां वा तत्रायं विषुवतश्चतुर्विंशतिदेशीयांशान्तरितो भवति ।
स यतः स्वमयनं परिवर्तयते उत्तरं वा दक्षिणं वा ते द्वे स्वस्ती भवतः । ता वैताश्चतस्रः
पथ्याः स्वस्तयः । तत्र दिवाकीर्त्यं यजति, पथ्यां स्वस्ति वा देवयजनीयां यजति ॥
वाग्वै पथ्या स्वस्तिर्बृहती नाम । सूर्यो हि बृहतीमध्यूढस्तपति ॥ तामेतां वाचमेव
तद्वयजति ॥

अदितिः

पुनर्वसुपुष्ययोरन्तरतो या तारकाद्यत्वे लुब्धकबन्धुनाम्ना प्रसिद्धा दृश्यते
तमाङ्गिरसं बृहस्पतिं प्राहुः । स एष देवानीकप्रमुखस्थो देवानां पुरोहितोऽभिज्ञायते ।
अङ्गिरसो हि ते सर्वे देवाः । ततः षड्भान्तरे तारकात्रयकलृप्तस्तादर्योऽरिष्टनेमिर्नामैको
विष्णुरथः सुपर्णो नाक्षत्रिको देवः प्रकल्प्यते तत्पृष्ठस्था लुब्धकबन्धुसमज्योतिष्का
या तारका विद्योतते स परमेष्ठी हंसो वा विष्णुरिति विद्यात् । तत्संघस्थो वा कश्चिदन्यः
परमेष्ठी स्यात् ॥ तद्वक्षसि भृगुपादमयः श्रीवत्सो विज्ञायते । विष्णुसंघस्थो हि स
भृगुरुशना कविरसुराणां पुरोहितोऽसुरानीकप्रमुखस्थः प्रतिपत्तव्यः । भृगवो हि ते
सर्वेऽसुराः । तथा चैताभ्यां भृग्वङ्गिरोभ्यामुशानोबृहस्पतिभ्यां व्योम्नो द्वे अर्द्धे
लक्ष्येते—दैवं चासुरं चेति ॥ अस्ति हि तदाङ्गिरसं दैवमण्डलं यस्य नामौ बृहस्पति-
रङ्गिराः प्रतपति । तदुपलक्षितो दैवमण्डलनभ्यो बिन्दुरदितिः तदनुबद्धाः प्राणा आ-
दित्याः ॥ अस्ति च तद्भार्गवमासुरं मण्डलं यस्य नामौ कविरुशना भृगुः प्रतपति ॥
उशना वै काव्योऽसुराणां पुरोहित आसीत् । तां ० ७ । ५ । २० ॥ तदुपलक्षित-
श्चासुरमण्डलनभ्यो बिन्दुर्दितिः । तदनुबद्धाः प्राणा दैत्याः ॥ ते हैते दित्यदिती अवि-
चालिन्यौ नित्ये भवतः । तन्नियामकयोः कविबृहस्पत्योरविचालित्वात् ॥ यावता च
तयोरुभयोर्मण्डलयोरन्योन्याभिनिवेशस्तन्मध्ये समुद्रमण्डलशायी भगवान् परमेष्ठी विष्णुः
प्रतपति । अन्तः समुद्रं चैकतो भृगुर्वारुणिर्दैत्यामिधानानसुरप्राणान् प्रचारयन्नभिसेते ।
अथान्यतो बृहस्पतिरादित्यामिधानान् देवप्राणान् प्रचारयन् प्रतपति । बृहस्पतिर्बै
देवानामुदगायत् ॥ तां ० ६ । ७ । १ ॥ तस्यैतस्य देवमण्डलस्याङ्गिरसस्य हस्तनक्षत्रगतेन
सवित्रा प्रारम्भो विज्ञायते । रेवती नक्षत्रस्थेन पूष्णाशिवभ्यां चाश्विनीनक्षत्रस्थाभ्यां
तदवसानं लक्ष्यते । तथा च श्रूयते—“देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीति ॥” ॥ ० । ० । ० ॥ रेवत्यादिहस्तान्तनक्षत्रा-
न्तराले पुनर्वसुनक्षत्रं दैवमण्डलस्यैतस्य नाभिर्भवति तत्र योऽयं दैवमण्डल-
मध्यबिन्दुस्तामदितिं समाचक्षते । न च तत्र काचित्तारा संप्रति लक्ष्यते । तेनैतां

मारुतीं सतीं नारीत्याचक्षते ॥ मरुद्विशेषस्य हि नर इत्येषा संज्ञा ॥ नरो वै देवानां ग्राम इति ताण्ड्यम् ॥ ६ । ६ । २ ॥ देवानां ग्रामे हीयमदितिरस्तीति नारीत्याख्यायते ॥ तत् उभयतो नवत्यंशान्तरितं मण्डलमादित्यं भवति ॥ तत् क्षेत्रज्ञाः प्राणा आदित्या नाम देवाः स्युः । ते चैतस्य मण्डलस्य द्वादशमासैर्विभक्तत्वाद् द्वादशेष्यन्ते । मण्डलाद्धे वेते रेवत्यादि हस्तान्ते समादित्या उपपद्यन्ते मध्यमश्चायं मार्तण्डो विवस्वानष्टमः संभवति ॥ तथा च श्रूयते—“अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वं परि । देवा उपप्रेत सप्तभिः परा मार्तण्डमास्थत्—” ॥ ० । ० । ० ॥ इति ॥ ते चाष्टौ नामतो ब्राह्मणेषु श्रूयन्ते— मित्रावरुणौ धात्र्यर्ग्यम्णौ अंशभगौ इन्द्रविवस्वन्तौ चेति ॥ तत्रायं मार्तण्डः सूर्य-त्रिम्बः । परमेष्ठिनं परितश्चङ्क्रममाणोऽयं सूर्यः संप्रत्यस्मिन्नदितिमण्डलगर्भे प्रतपतीति स आदित्य उच्यते । यत्राद्धे सूर्यस्तत्रैव दिवा । तत्रैवायं संवत्सरो नामाग्निः । अथान्याद्धे रात्रिः । सोऽपां समुद्रोऽर्णवः तत्र सोमः । अग्नौ च सोमा-हुतिर्यज्ञः । स चास्थामदित्यामेवाधिक्रियते । अदित्या देवयजनस्थानोपपादकत्वात् । द्यावापृथिव्यौ सान्तरिक्षे चेदं देवयजनं स्थानं भवति । श्रूयते च—

“अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥” इति ॥

तथा चार्यं यज्ञोऽदिस्थुपलक्षितेऽस्मिन्नादित्यमण्डले विधीयमानः स्वर्गाय संपद्यते न त्वापुरमण्डले । गोपथश्रुतौ यज्ञस्योर्ध्वगामित्वश्रवणादासुरमण्डले त्वङ्गिरसोऽप्रसिद्धयोर्ध्वगमनासंभवात् ॥ तेनैतामदितिं यजति ॥ अत्रेयं मैत्रिश्रुतिर्भवति “अक्लृप्तं वा इदमासीत्—दिशो वा इमा न प्राजानन् । ते देवा अदितिमुखेनेमा दिशः प्राजानन् अदितिं वा एतदनुप्रयन्ति—अदितिमनूयन्ति । ततो वा इमा दिशः प्राजानन् । पथ्यां यजति—इमामेव तेन दिशः प्राजानन् यदग्निम् । इमां तेन यत् सोमम् । इमां तेन यत् सवितारम् । इमां तेन यददितिम् । इयं वा अदितिः । ऊर्ध्वा वा अस्या दिक् । ऊर्ध्वामेव तेन दिशं प्राजानन् । ततो वा अकल्पत ॥ ३ । ७ । १ ॥

गन्धर्वाः

गन्धर्वा द्विविधाः—दिव्या मर्त्याश्च । तत्र दिव्याः सप्तैकेषाम् । एकादशान्येषाम् । सप्तविंशतिरन्येषाम् ॥ सुवाङ्, नभ्राट्, अङ्गारिः, बम्भारिः, अस्तः, अहस्तः, कृशानुः, इति सोमक्रयणा मैत्रायणसंहितायाम् ॥ १ । २ । ५ ॥ सुवर्चा, अभ्राजः, अङ्गारिः, बम्भारिः, हस्तः, सुहस्तः, स्वाञ्चिः, मूर्धन्वान्, विश्वावसुः, कृधुः, कृशानुः, इत्येकादशगन्धर्वाः पौराणिकानाम् ॥ वातो वा त्वा मनो वा त्वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः तेऽग्रे अश्वमयुञ्जन् ॥ ६ । ७ ॥ इति यजुःसंहितायाम् ॥ गन्धर्वा वारुणा ज्ञेयाः स्वर्ग्य

ज्ञानप्रकाशकाः । सूर्याश्ववाहकाः सोमरक्षका रुक्चिकित्सकाः ॥ १ ॥ एते नक्षत्र-
चक्राणामपि सन्ति प्रवर्तकाः । देवा विजित्य गन्धर्वान् पृथिव्यां सोममाहरन् ॥ २ ॥
अथ मर्त्यगन्धर्वा द्विविधाः—प्रतिष्ठिता अप्रतिष्ठिताश्च । तत्र प्रतिष्ठिताः सभ्याः
ते द्विविधाः—मौनेयाः प्राधेयाश्च । भीमसेनः, उग्रसेनः, सुपर्णः, वरुणः, गोपतिः, धृत-
राष्ट्रः, सूर्य्यवर्षा, अर्कपर्णः, पर्जन्यः, कलिः, प्रयुतः, भीमः, चित्ररथः, सर्वविद्, वशी,
शालिशिराः, नारदः—इति मौनेयाः ॥ १७ ॥ सिद्धः, पूर्णः, बर्ही, पूर्णायुः, ब्रह्मचारी, रति-
गुणः, सुपर्णः, विश्वावसुः, भानुः, चन्द्रः—इति प्राधेयाः (म० भा० १।६५) अथ नर्त्तनगा-
यनादिवृत्तयोऽसभ्याः—अप्रतिष्ठिताः । हाहाः, हूहूः, चित्ररथः, हंसः, विश्वावसुः, गो-
मायुः, तुम्बुरुः, नन्दी—इत्यष्टौ तेषामप्रतिष्ठितानां मर्त्यगन्धर्वाणां कुलशाखा भवन्ति स्म ॥

गणदेवानां व्रतपतयो देवाः

वसवः, आप्रियो, घोरा, घोरतनवो, मनोताः, छन्दांसि, ऋतवः, पशवः, इत्यग्नेः ॥
रुद्रा वायोः ॥ मरुत, आप्त्या, ऋभवः—इतोन्द्रस्य ॥ आदित्याः सूर्य्यस्य ॥
विश्वेदेवाः, साध्याः, आप्त्याः—इति बृहस्पतेः ॥ पितरो वीर्य्याणीति ब्रह्मणस्पतेः ॥
नक्षत्राणि, गन्धर्वाः—इति चन्द्रमसः ॥ ऋतवो, रुद्रा, विश्वेदेवाः, साध्याः, आप्त्या,
ओषधयो, दिशः—इति सोमस्य ॥ आदित्या, आपो, असुराः—इति वरुणस्य ॥
पन्थानो मृत्योर्यमस्य ॥ भृगवोऽङ्गिरस ऋक्कानो यज्ञप्रजापतेः ॥ ऋषयो ब्रह्मणः ॥ इत्येते
देवानां महिमानो गणदेवाः ॥ तेषामेषां गणदेवानामिमे देवा व्रतपतयो भवन्ति ॥

देवमहिमानः

ऋषभस्य गावः । वृष्णो वाजिनः । वायोर्ब्रह्म । इन्द्रस्येन्द्रियाणि । सोमस्यौष-
धयः । सूर्य्यस्य नक्षत्राणि । चन्द्रमसो मासः । वातस्य प्राणाः—महिमानो भवन्ति ।
श्रूयते हि—

गोभिश्च पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ॥

वायुश्च पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १६।४।१ ॥

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्य्यः ॥

माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ १६।४।२ ॥

इति चतुर्थः पाठः ॥ ४ ॥

प्रजापतेस्तनवः

“यावान् वै प्रजापतिरूर्ध्वस्तावांस्तिर्य्यङ् । यावन्त इमे लोका ऊर्ध्वस्तावन्तस्ति-
र्य्यङ्गः” इति ताण्ड्यम् १८।६॥

- (१) अन्नादाचान्नपत्नी चेति द्वे । भद्रा च कल्याणी चेति द्वे । अनिलपा चापभया चेति द्वे । अनाप्या चानाप्या चेति द्वे । अनाधृष्या चाप्रतिधृष्या चेति द्वे । अपूर्वा च भ्रातृव्या चेति द्वे । इत्येता द्वादश प्रजापतेस्तन्वो भवन्ति । ताश्च क्रमेणाग्न्यादित्यौ सोमपशू वायुमृत्यू पृथ्वीदिवौ अग्न्यादित्यौ मनःसंवत्सरौ चेति ऽभावयेत् । एष कृत्स्नः प्रजापतिः ॥ “एषा वै प्रजापतेः पशुष्ठा तनूर्यच्छिपिविष्टः ।” (तां० १८ । ६) यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टः । (तां० ६ । ७ । ३)

अग्नेस्तनवः । तत्राग्नेरष्टदैवत्या तनूः

- (२) अग्नेर्वा एताः सर्वास्तन्वो । यदेता अष्टौ देवताः—वा^१युः । इन्द्र^२वायू । मित्रा^३वरुणौ । मित्रः^४ । अश्विनौ^५ । विश्वेदेवाः^६ । इन्द्रः^७ । सरस्वतीति ॥ स यदग्निः प्रवानिव दहति—तदस्य वायव्यं रूपम् ॥ १ ॥ यद्वैधमिव कृत्वा दहति तदैन्द्रवायवं रूपम् ॥ २ ॥ यदुच्च हृष्यति नि च हृष्यति तदस्य मैत्रावरुणं रूपम् ॥ ३ ॥ यदग्निर्घोरसंस्पर्शस्तदस्य वारुणं रूपम् । तं यद्वोरसंस्पर्शं सन्तं मित्रकृत्येवोपासते तदस्य मैत्रं रूपम् ॥ ४ ॥ यदेनं द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वाभ्यामरणीभ्यां मन्थन्ति तदस्याश्विनं रूपम् ॥ ५ ॥ यदुच्चैर्घोषस्तनयन् बबबा कुर्वन्निव दहति यस्माद्भूतानि विजन्ते तदस्यैन्द्रं रूपम् ॥ ६ ॥ यदेनमेकं सन्तं बहुधा विहरन्ति तदस्य वैश्वदेवं रूपम् ॥ ७ ॥ यत् स्फूर्जयन् वाचमिव यदन् दहति तदस्य सारस्वतं रूपम् ॥ ८ ॥ तदित्यमष्टदैवत्यं रूपमेकोऽग्निः ॥

अग्नेर्घोरास्तनवो येऽमी रुद्रा उग्राः देवाः

- (३) रुद्रो वा एष यदग्निः । तस्य द्वे तन्वौ घोराऽग्न्या च । शिवान्या च । पवमानः पावकः शुचिः—इत्येते त्रयो घोराग्नयः । प्राणो वै पावमानः । अन्नं पावकम् वीर्यं शुचि । पवमानः पृथिव्याम् पावकोऽन्तरिक्षे । शुचिर्दिवि इत्याहुर्वाजिनः ॥ अप्सु पवमानः । वायौ पावकः ॥ आदित्ये शुचिरिति कौषीतकीयाः देवा अग्नौ वामं वसु संन्यदधत् । तदग्निस्त्रेधा विन्यदधात् । पशुषु तृतीयमप्सु तृतीयमादित्ये तृतीयम् । पशवो वा अग्निः पवमानः । आपो वा अग्निः पावकः असौ वा आदित्योऽग्निः शुचिः ॥ तनुवो वा वैता अग्न्याधेयस्येति तैत्तिरीयाः ॥ तै० ब्रा० १ । १ । ६ ॥

अग्नेः शिवास्तनवो येऽमो शिवाः शान्ता देवाः

- (४) गार्हपत्याग्निः । धिष्ण्याग्निः । आहवनीयाग्निः—इत्येते त्रयः शिवाग्नयः ॥
विराट् च स्वराट् च सम्राट् च । अभिभूश्च विभूश्च परिभूश्च । प्रभ्वो च
प्रभूतिश्च ॥ एता वा अग्नेष्टौ शिवास्तनवः । इति तैत्तिरीयाः । तै०
ब्रा० १ । १ । ७ ॥

अग्नेरौपसदिकास्तनवः

- (५) अयःशया रजःशया हरिशया रुद्रिया—इत्यग्नेस्तनवः । ताः क्रमेणायस्मयी-
रजता हरिणीति विद्यात् (शत० ३ । ३ । २ । २३) रुद्रिया वैद्युता-
ग्नियुक्ताः—इति सायणः । (तै० ब्रा० २ । ७ । १२)

अग्निरूपाणि—आवतारिकाणि

संवत्सरः, वैश्वानरः, कुमारः, चित्रः, पशुः, इत्यमी पञ्चाग्नेरवताराः ॥ तत्र
संवत्सरोऽमृताग्निः ॥ प्राणापानव्यानाग्नित्रययोगादुत्पन्नो मर्त्याग्निर्वैश्वानरः । औषस्यां
संवत्सरादुत्पन्नोऽग्निः कुमारः । कुमार एवायमष्टधा परिणममानश्चित्राग्निः । वसव
इत्याख्याता अष्टौ भेदाः संहत्यैकश्चित्राग्निरुच्यते । अष्टौ ते चित्राग्नयः परस्परयोगेन
रूपान्तरतामागत्य पञ्चपशवो भवन्ति ॥ पुरुषः, अश्वः, गौः, अविः, अजः—इति ।
एतान्येव पञ्चानेः सर्वाणि रूपाणि ॥ तथाहि—

गार्हतोऽग्निः प्राणः संवत्सरः । राथन्तरोऽग्निरपानः संवत्सरः । ऋतुभिः षड्भिर्वि-
भक्तो व्यानाग्निरान्तरिक्ष्यः संवत्सरः । संवत्सराग्नित्रययोगजन्मा त्रैलोक्यव्यापी प्रत्येक-
शरीरव्यापी चाग्निर्वैश्वानरः । पार्थिवान्तरिक्षाभ्यां वैश्वानराभ्यां कुमारो जायते ॥
मृज्जलतेजोवाय्वाकाशसोमसूर्यात्मभेदभिन्नेष्वमीष्वर्थजातेषु यः खल्वभिन्न एक-
विधोऽग्निरनुस्यूतः स कुमारः । यस्यैतानि ध्रुवधर्त्रधरुणानि कर्माणि स कुमारः ॥
मृज्जलादिरूपैर्विपरिणता अष्टरूपा मूर्ताभूर्ताः सर्वेऽर्थाश्चित्राग्निः । अथैतेषामेवाष्टानां
संघातजन्मानि तद्वैकारिकरूपाणि त्वङ् मांसमेदोऽस्थिमज्जाख्यानि पञ्च पशवः ससंज्ञाः ॥
त्वग्बल्कलकिंशारुदारुसारादयः पशवोऽन्तःसंज्ञाः ॥ सूतगन्धकाभ्रकाशमहिरण्याद-
योऽसंज्ञाः पशवः । तेषामेषां पशूनां पञ्चैव जातयो भवन्ति ॥ पुरुषाश्वगवाव्यजाः ॥
तानन्यत्र व्याख्यास्यामः ॥

अग्निरूपाणि कार्म्मिकाणि

त्रयो वा अग्नयो—हव्यवाहनो देवानां, कव्यवाहनः पितॄणां, सहरक्षा असुरा-

णाम् ॥ (तै० सं० १ । ६ । ५) रक्षा क्षारो भस्म । तत्सहितोऽग्निः सहरक्षाः ॥ सूर्य-
रश्मिषु पृथिव्या अग्निर्हव्यवाहनः । चन्द्रिकायां पृथिव्यग्निः कव्यवाहनः । तमसि पृथि-
व्यग्निः सहरक्षाः ॥

अग्निरूपाणि सांस्कारिकाणि

अग्निस्त्रिविधः ॥ त्रेताग्निः । गृह्याग्निः । लौकिकाग्निश्चेति ॥ त्रेता, वैतानः,
वैतानिकः, आरण्यः, संस्कृतः, वैधः, वैदेकः, श्रौतः—इत्येकार्थाः ॥ गार्हपत्यः आह-
वनीयो दक्षिणाग्निरित्येवं वा, गार्हपत्यः आहवनीयो धिष्ण्याग्निरित्येवं वा सहकृताग्नि-
त्रित्वं त्रेता । दारप्रहणकालो दायप्रहणकालो वाग्निर्गृह्यः । गृह्याग्निः, आवसथ्याग्निः,
शालाग्निः, औपासनाग्निः, स्मार्त्ताग्निरित्येकार्थाः ॥ आभ्यामन्यः सर्वोऽप्यग्निलौकिकः ॥
येनाग्निना पाकशालायामन्नं पचन्ति, अन्यानि वा लौकिकानि कर्म्मणि कुर्वन्ति स
लौकिकोऽग्निः ॥

अग्निबन्धवः

अग्नेर्बन्धवोऽग्निभेदाद्विद्यन्ते । स्थित्युपपादका धर्म्मा बन्धवः ॥ अग्निः, शिष्यं,
प्रतिष्ठा, आसञ्जनम्, इत्यग्निबन्धवः ॥

- (१) इमौ लोकौ अग्निः । दिशः शिष्यम् । आपः प्रतिष्ठा । आदित्य आस-
ञ्जनम् ॥ १ ॥
- (२) संवत्सर एषोऽग्निः । ऋतवः शिष्यम् । अहोरात्रे प्रतिष्ठा । चन्द्रमा
आसञ्जनम् ॥ २ ॥
- (३) आत्मैवाग्निः । प्राणाः शिष्यम् । मनः प्रतिष्ठा । अन्नमासञ्जनम् ॥ ३ ॥

अग्निजा धर्म्माः

भूर्भुवः स्वर्बलं त्वोजो ब्रह्मक्षत्रं यशो महत् ॥
यच्च सत्यं तपो नामरूपं यदमृतं परम् ॥ १ ॥
चक्षुः श्रोत्रं मनश्चायुर्यच्च विश्वं यशो महः ॥
सामं तपो हरो भाश्च भवन्त्यग्निवशादिति ॥ २ ॥
जातवेदाः पावको वा रूपाण्येतानि भावयेत् ॥
वैश्वानरो वैद्युतो वा शमूर्जं पुष्टिमर्पति ॥ ३ ॥
तैत्तिरीयब्राह्मणस्य तृतीयदशमस्य हि ॥
पञ्चमे अयते चैतदग्निधर्म्मानुवर्तनम् ॥ ४ ॥

अथाग्निविशेषाः । तत्र आप्रियो मैत्रेयादीनाम्

बर्हिः, दुरः, उषासानक्ता, जोष्ट्री, ऊर्जाहुती, दैव्याहोतारा । तिस्रो देवीः, तनून-
पात्, नराशंसः, वनस्पतिः, त्वष्टा वाजिनः—इत्याप्रियो द्वादशदेवा एकेषाम् ।
तत्र प्रयाजेषु बर्हिरोषधयः । अनुयाजेषु फलम् ॥ दुर उपस्थम् ॥ उषासानक्ता व्युष्ट-
निम्न्रुक्तिः । जोष्ट्रीं जातं जनिष्यमाणं च । ऊर्जाहुती यदन्ति च पिबति च । दैव्याहो-
तारा इमे । तिस्रो देवीर्वाक् छन्दः । तनूनपादप्रसृतो यज्ञः । नराशंसः प्रसृतो यज्ञः ।
तनूनपातं प्रयाजेष्वेव ॥ अप्रसृतो हि तर्हि यज्ञः । नराशंसमनुयाजेष्वेव । प्रसृतो हि
तर्हि यज्ञः ॥ वनस्पतिः, सोमः, सौमीः, प्रजाः, त्वष्टा रूपविकर्ता । वाजिनः पशव-
श्छन्दांसि ॥ इति मैत्रायणी श्रुतिः ॥ १ । १० । ६ । १० ॥

आप्रिय ऐतरेयादीनाम्

समिधः, तनूनपात्, नराशंसः, इडः, बर्हिः, द्वारः, उषासानक्ता, दैव्याहोतारा,
तिस्रो देवीः, त्वष्टा, वनस्पतिः, स्वाहाकृतयः—इत्याप्रियो द्वादशदेवा ऐतरेयतैत्तिरीया-
दीनाम् ॥ तत्र प्राणा वै समिधः । प्राणस्तनूनपात् । प्रजा वै नरो वाक्शंसः । अन्नं
वा इलः । पशवो वै बर्हिः । वृष्टिर्वै दुरः । अहोरात्रे वा उषासानक्ता । प्राणपानौ
दैव्याहोतारा । प्राणोऽपानो व्यानस्तिस्रो देव्यः । वाग् वै त्वष्टा । प्राणो वनस्पतिः ।
प्रतिष्ठा स्वाहाकृतयः—इत्यैतरेयश्रुतिर्व्याचष्टे ॥

आप्रियो नैरुक्तादीनाम्

अन्यथाप्याहुरन्ये । तथा हि । इध्मः समिधा । तनूनपादाज्यम् । नराशंसो यज्ञः ।
इडोऽन्नम् । ईड ईड्य इति दीर्घादिरेकेषां यास्कस्य च निरुक्तकृतः । बर्हिर्दर्भाः । द्वारो
गृहद्वारम् । उषासानक्ता अहोरात्रे । दैव्याहोतारा प्रथममध्यमाग्नी । तिस्रो देवीर्भारतीडा-
सरस्वत्यो वाचो लोकत्रयसंभक्ताः । त्वष्टा माध्यमिको देवविशेषः । वनस्पतिर्यूपः ।
स्वाहाकारस्तच्छब्दप्रयोगः । इति कात्थक्यादयो नैरुक्ता मन्यन्ते । अथवा समिदादि-
यज्ञसामग्र्युपलक्षिता अग्निविशेषा एवाप्रियो देवा इति शाकपूण्यादयः प्राहुः ।
वासिष्ठमात्रेयं बाध्यश्वं गार्त्समदमिति नराशंसवन्ति ॥ मैधातिथं, दैर्घतमसं
प्रेषिकमित्युभयवन्ति । आगस्त्यं जामदग्न्यं वैश्वामित्रं काश्यपासितीयामिति तनून-
पात्वन्ति ॥

प्रयाजानुयाजाः

यज्ञे प्रमुखतो यजनीया आप्रियः प्रयाजाः । पृष्ठतो यजनीया आप्रियोऽनुयाजाः ॥

तनूनपात्वत्यो निर्नराशंसा आप्रिय एकादश प्रयाजाः । नराशंसवत्यो निस्तनूनपात आप्रिय एकादशानुयाजाः ॥

ये प्रयाजा येऽनुयाजास्त आग्नेया इति स्थितिः ॥

आत्मा प्राणाश्च पशवश्छन्दांसि च तथर्तवः ॥ १ ॥

ते चैते यज्ञविशेषे न्यूनाधिका इज्यन्ते । यथा हविर्यज्ञे—समित्, तनूनपात् इद्, बर्हिः, स्वाहा—इत्येते वसन्तादयः पञ्चर्तवः प्रयाजाः । ते च प्राणाः रेतः प्रजा भूमा वशीकार इति विद्यात् ॥ अथ बर्हिः, नराशंसः, अग्निरित्येतानि जगतीन्निष्टुब् गायत्रीछन्दांसि । ते त्रयोऽनुयाजाः ॥ एवमन्यत्रान्यत्र द्रष्टव्याः ॥

(१५) सावित्राग्निः षड्दैवतः

प्राणो बलं, तत्र तपस्तत्सत्यं स परोरजाः ॥

सत्ये परोरजस्यस्मिन् सावित्राग्निः प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥

दय्यां म्यातिर्ऋषिः सक्तोऽत्यंहायारुणये पुरा ॥

इत्थं प्रोवाच सावित्रप्रतिष्ठां तैत्तिरीयके ॥ २ ॥ (३ । १० । ६)

गोत्रेण गौतमो देवभागः श्रौतर्ष इत्यृषिः ॥

अहीना चर्षिराश्वत्थः साधुसावित्रमग्रहीत् ॥ ३ ॥

^१ संवत्सर ^२ ऋतुर्मासो ^३ ऽर्धमासो ^४ ऽहानि ^५ रात्रयः ॥

^७ मुहूर्ताश्च ^८ मुहूर्तांशा अग्निः सावित्र इज्यते ॥ ४ ॥

एतानि ^१ नामधेयानि ^२ ब्रह्मणश्च प्रजापतेः ॥

^३ बृहस्पतीन्द्रवाय्वग्निदेवानामग्निमानिनाम् ॥ ५ ॥

(१६) चैत्रादयो मासाः साधिमासाः

(१) ^१ अरुणः । ^२ अरुणरजाः । ^३ पुण्डरीकः । ^४ विश्वजित् । ^५ अभिजित् । ^६ आर्द्रः ।

^७ पिन्वमानः । ^८ अन्नवान् । ^९ रसवान् । ^{१०} इरावान् । ^{११} सर्वौषधः । ^{१२} संभरः । मह-

^{१३} स्वान् । इति चैत्रादिमासानामधिकमासस्य च नामानि ॥

(३१)

(१७) चैत्रादि शुक्लपक्षाः

(२) ^१पवित्रं । ^२पवयिष्यन् । ^३पूतः । ^४मेध्यः । ^५यशः । ^६यशस्वान् । ^७आयुः । ^८अमृतः ।
^९जीवः । ^{१०}जीविष्यन् । ^{११}स्वर्गः । ^{१२}लोकः । इति चैत्रादिमासानां शुक्लपक्षाणां
नामानि ॥

(१८) चैत्रादि कृष्णपक्षाः

(३) ^१सहस्वान् । ^२सहीयान् । ^३ओजस्वान् । ^४सहमानः । ^५जयन् । ^६अभिजयन् ।
^७सुद्रविणः । ^८द्रविणोदाः । ^९आर्द्रपवित्रः । ^{१०}हरेकेशः । ^{११}मोदः । ^{१२}प्रमोदः—इति
चैत्राद्यपरपक्षनामानि ॥ योऽयं सावित्राग्निः सत्ये प्रतितिष्ठति । एष ह्येव
ते मासाः । एषोऽर्द्धमासाः ॥

(१९) शुक्लपक्षस्याहानि

(४) ^१संज्ञानं । ^२विज्ञानं । ^३प्रज्ञानं । ^४जानत् । ^५अभिजानत् । ^६संकल्पमानं ।
^७प्रकल्पमानम् । ^८उपकल्पमानम् । ^९उपल्लृप्तम् । ^{१०}ल्लृप्तं । ^{११}श्रेयः । ^{१२}वसीयः ।
^{१३}आयत् । ^{१४}संभूतं । ^{१५}भूतम्—इति शुक्लपक्षगतानां प्रतिपदादिपौर्णमास्यन्ता-
नामह्नां नामानि ॥

(२०) कृष्णपक्षस्याहानि

(५) ^१प्रस्तुतं । ^२विष्टुतं । ^३संस्तुतं । ^४कल्याणं । ^५विश्वरूपं । ^६शुक्रम् । ^७अमृतं ।
^८तेजस्वि । ^९तेजः । ^{१०}समिद्धम् । ^{११}अरुणम् । ^{१२}भानुमत् । ^{१३}मरीचिमत् । ^{१४}अभि-
^{१५}तपत् । ^{१६}तपस्वत् । इति कृष्णपक्षगतानां प्रतिपदाद्यमावास्यान्तानामह्नां
नामानि ॥

(२१) शुक्लपक्षस्य रात्रयः

(६) ^१दर्शा । ^२दृष्टा । ^३दर्शता । ^४विश्वरूपा । ^५सुदर्शना । ^६आय्यामाना । ^७प्यायमाना ।

(३२)

^८प्याया । ^९सृते । ^{१०}इरा । ^{११}आपूर्य्यमाणा । ^{१२}पूर्य्यमाणा । ^{१३}पूर्य्यन्ती । ^{१४}पूर्णा ।

^{१५}पौर्णमासी । इत्येतानि शुक्लपक्षस्य पञ्चदशानां रात्रीणां नामानि ॥

(२२) कृष्णपक्षस्य रात्रयः

(७) ^१सुता । ^२सुन्वती । ^३प्रसुता । ^४सूयमाना । ^५अभिषूयमाणा । ^६पीती । ^७प्रपा । ^८संपा ।

^९वृषिः । ^{१०}तर्पयन्ती । ^{११}कान्ता । ^{१२}काम्या । ^{१३}कामजाता । ^{१४}आऽष्मती । ^{१५}कामदुघा ।
इत्येतानि कृष्णपक्षस्य पञ्चदशानां रात्रीणां नामानि ॥ योऽयं सावित्राग्निः
सत्ये प्रतितिष्ठति । एष ह्येव तान्यहानि । एष रात्रयः ॥ १ ॥

(२३) शुक्लपक्षे अहनो मुहूर्ताः

(८) ^१चित्रः । ^२केतुः । ^३प्रभान् । ^४आभान् । ^५संभान् । ^६ज्योतिष्मान् । ^७तेजस्वान् ।

^८आतपन् । ^९तपन् । ^{१०}अभितपन् । ^{११}रोचनः । ^{१२}रोचमानः । ^{१३}शोभनः । ^{१४}शोभमानः ।

^{१५}कल्याणः । इति शुक्लपक्षे एकैकस्मिन्नहनि प्रातःसायान्तर्वर्तिमुहूर्तानां नामानि ॥

(२४) कृष्णपक्षे अहनो मुहूर्ताः

(९) ^१सविता । ^२प्रसविता । ^३दीप्तो । ^४दीपयन् । ^५दीप्यमानः । ^६ज्वलन् । ^७ज्वलिता ।

^८तपन्वि । ^९तपन् । ^{१०}सतपन् । ^{११}रोचनः । ^{१२}रोचमानः । ^{१३}सुम्भूः । ^{१४}शुम्भमानः ।

^{१५}वामः । इति कृष्णपक्षे प्रत्यहमुदयास्तमयान्तर्गतमुहूर्तानां नामानि ॥

(२५) शुक्लपक्षे रात्र्या मुहूर्ताः

(१०) ^१दाता । ^२प्रदाता । ^३आनन्दः । ^४मोदः । ^५प्रमोदः । ^६आवेशयन् । ^७निवेशयन् । ^८संवे-

^९शनः । ^{१०}संशान्तः । ^{११}शान्तः । ^{१२}आभवन् । ^{१३}प्रभवन् । ^{१४}संभवन् । ^{१५}संभूतः ।

भूतः । इति शुक्लपक्षे रात्र्या मुहूर्तानां नामानि ॥

(३३)

(२६) कृष्णपक्षे रात्र्या मुहूर्ताः

(११) अभिशास्ता^१ । अनुमन्ता^२ । आनन्दः^३ । मोदः^४ । प्रमोदः^५ । आसादयन्^६ ।
निषादयन्^७ । संसादनः^८ । संसन्नः^९ । सन्नः^{१०} । आभूः^{११} । विभूः^{१२} । प्रभूः^{१३} ।
शंभूः^{१४} । भुवः^{१५} । इति कृष्णपक्षरात्रौ मुहूर्तानां नामानि ॥ योऽयं सावि-
त्राग्निः । एष ह्येव तेऽहो मुहूर्ताः एष रात्रेः ॥

(२७) प्रतिमुहूर्तं मुहूर्ताः

(१२) इदानीम्^१ । तदानीम्^२ । एतर्हि^३ । क्षिप्रम्^४ । अजिरम्^५ । आशुः^६ । निमेषः^७ । फणः^८ ।
द्रवन्^९ । अतिद्रवन्^{१०} । त्वरन्^{११} । त्वरमाणः^{१२} । आशुः^{१३} । आशीयान्^{१४} । जवः^{१५} ।
इति मुहूर्तावयवा इष्यन्ते । योऽयं सावित्राग्निः एष ह्येव ते मुहूर्तानां
मुहूर्ताः । एष ह्येव ते यज्ञ ऋतवः । एष ऋतवः । एष संवत्सरः । इति
विद्यात् ॥ अग्निं वाय्विन्द्रं बृहस्पतिं प्रजापतिं ब्रह्मणां वै देवानामेतानि
नामधेयानि । स वा एषोऽग्निरपक्षपुच्छो वायुरेव । तस्याग्निर्मुखम् ।
असावादित्यः शिरः । स यदेते देवते अन्तरेण तत्सर्वं सोऽव्यति तस्मात्
सावित्रः ॥

(२८) नाचिकेताग्निः

- (१) नाचिकेता नामोद्दालकस्य ऋषेः पुत्र आसीत् । तेन दृष्टोऽग्निर्नाचिकेतः ॥
(२) उरवो ह वै नामैते लोका येऽवरेणादित्यम् । अथ हैते वरीयांसो लोका
ये परेणादित्यम् । अन्तवन्तं ह वा एष क्षय्यं लोकं जयति योऽवरेणा-
दित्यम् । अथ हैषोऽनन्तमपारमक्षय्यं लोकं जयति यः परेणादित्यम् ।
अनन्तं ह वा अपारमक्षय्यं लोकं जयति योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते य
उ चैनमेवं वेद (तै० ब्रा० ३ । ११ । ७) ॥
(३) संवत्सरो वा अग्निर्नाचिकेतः । तस्य वसन्तः शिरः ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षः ।
वर्षाः पुच्छम् । शरदुत्तरः पक्षः हेमन्तो मध्यम् । एष वाव सोऽग्निरग्नि-
मयः पुनर्नवः (तै० ब्रा० ३ । ११ । १०) ॥
(४) अयं वाव यः पवते सोऽग्निर्नाचिकेतः । स यत् प्राङ् पवते तदस्य शिरः ।

यदक्षिणा स दक्षिणः पक्षः । यत् प्रत्यक् तत्पुच्छम् । यदुदक् स उत्तरः पक्षः । अथ यत्संवाति तदस्य समञ्चनं च प्रसारणं च । अथो संपदेवास्य मा ॥ हिरण्यं वा अग्नेर्नाचिकेतस्यायतनं प्रतिष्ठा ॥ हिरण्यं वा अग्नेर्नाचिकेतस्य शरीरम् ॥

- (५) त्रेधा ह्ययमग्निर्नाचिकेतः प्रतिपद्यते । योऽर्वाचीनः सप्तदशाद्—यश्च पराचीनः पञ्चविंशात् ॥ तावन्तरेण च मध्यमोऽन्य इति ॥ तेनायं त्रिणाचिकेतो नाम व्याख्यातः ॥

(२६) वायुप्रभेदाः

- (१) पुरस्ताद्वातः प्राणः । दक्षिणतो वातो मातरिश्वा । पश्चद्वातः पवमानः । उत्तरतो वातः सविता ॥ इति तैत्तिरीयाणाम् ॥ (तै० ब्रा० २ । ६ ।) ॥
 (२) अथ भृगुरेष प्राङ्मेजमानो वायुः । दक्षिणामेजमानो मातरिश्वा । प्रतीचीमेजमानः पवमानः । उदीचीमेजमानो वातः ॥
 (३) इत्यमुत्क्रान्तेष्वेतेषु सत्सु अथार्वाग् योऽवशिष्यते वायौ भृगोर्भागोऽवष्टब्धः सोऽथर्वा नाम इति गोपथीयानाम् (१ । १) ॥

(३०) ब्रह्मणः परिमरः

- (१) ऐतरेयो महिदासः प्राह—अयं वै ब्रह्म योऽयं पवते । तमेताः पञ्चदेवताः परिभ्रियन्ते—विद्युद्, ^१वृष्टिः, ^२चन्द्रमाः, ^३आदित्यः, ^४अग्निरिति ॥
 (२) विद्युद्वै विद्युत्य वृष्टिमनुप्रविशति । वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनुप्रविशति । चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति । आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निमनुप्रविशति । अग्निर्वा उद्वान् वायुमनुप्रविशति । यो योऽनुप्रविशति सोऽन्तर्धीयते तं न निर्जानन्ति ॥

ता वा एता देवता अत एव पुनर्जायन्ते । वायोरग्निर्जायते । प्राणाद्वि बलान्मध्यमानोऽधिजायते । अग्नेर्वा आदित्यो जायते । आदित्याद्वा चन्द्रमा जायते । चन्द्रमसो वै वृष्टिर्जायते । वृष्टेर्वै विद्युज्जायते । स एव ब्रह्मणः परिमरः । स एव प्राणे वायौ सर्वेषां संवर्गः । तमेतं ब्रह्मणः परिमरं मैत्रेयः कौषारवः सुत्वने कैरिशये भार्गवणाय राज्ञे प्रोवाच ॥

(संवर्गः) सयुग्वा रैको जानश्रुतये पौत्रायणाय प्राह—वायुर्वाव संवर्गः । यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति । सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति । चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति । यदाऽप उच्छ्रुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति । वायुर्ह्येवैतान् सर्वान्

(३५)

संवृङ्क्ते ॥ इत्यधिदैवतम् । अथाध्यात्मम् । प्राणो वाव संवर्गः । स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति, प्राणं चक्षुः, प्राणं श्रोत्रम्, प्राणं मनः ॥ प्राणो होवैतान सर्वा न संवृङ्क्ते इति ॥

इति पञ्चमः पाठः ॥ ५ ॥

(१) साहस्रविद्या

प्रजापतिर्वा एतन् सहस्रमसृजत । तद्देवेभ्यः प्रायच्छदिति तारुण्यम् । ६ । १ । ० ॥
प्रजापतिरेवेदं सर्वं यदिदं किञ्चन दृश्यते । अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीद्—
अर्द्धममृतम् । इति च वाजिश्रुतिः । तस्यैकस्य प्रजापतेरेतौ द्वौ भागौ द्वावग्नी उच्येते ।
चित्त्यो मर्त्यः पशुरग्निः । चित्तेनिधेयममृतं ब्रह्माग्निः । स इत्थं द्विविधः क्षरोऽग्नि-
राख्यातः । तत्रायमेष चित्त्यः प्रजापतिर्यमेतमेकैकं कञ्चन पिण्डं कार्यं परिपश्यामः ।
उभयं हैतदग्रे प्रजापतिरास मर्त्यं चैवामृतं च । तस्य प्राणा एवामृता आसुः । शरीरं
मर्त्यम् । इति श्रुतेः । श० १० । १ । ४ । १ ॥ स एष पश्वग्निरमृतेन ब्रह्माग्निना
प्राणेन नित्यमविनाभूतः संसृष्ट एव रूपं धत्ते । त्रयीं तु विद्यां ब्रह्मेत्याचक्षते । मनः
प्राणसगर्भा हीयममृता वाक् त्रयी विद्या । सा प्रतिष्ठा । ब्रह्मण्यस्यां प्रतिष्ठायां प्रति-
ष्ठितो हि स पशुरग्निः परितस्तममृतार्गिन् स्वां प्रतिष्ठामात्मना धत्ते । सोऽयममृताऽग्निः
पुनरितरथा त्रयी विद्या भवति साहस्रं नाम । वेदा लोका वषट्कार इति हि त्रीणि
सहस्राणि साहस्रम् । ऋग्यजुःसामानीति त्रयो वेदा अथर्वा चेत्येकं सहस्रम् ।
पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौरिति त्रयो लोकाः—आपश्चेत्येकं सहस्रम् । त्रिवृत्पञ्चदशैकविंशा-
क्षयः स्तोमाः त्रिणवत्रयस्त्रिंशो चेत्येकं सहस्रम् ॥ एतानि हि त्रीणि सहस्राणि सयुज्येकं
साहस्रम् ॥ तदिदं पशुरयमग्निः साहस्रमुपुष्यत् । तेनैते वेदा लोका वषट्कारश्चाग्नि-
भक्तयो भाव्याः । इन्द्रविष्णू सयुजौ चैतन् सहस्रत्रितयं प्रवर्तयतः ॥—“इन्द्रश्च विष्णो
यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्—” इतिमन्त्रश्रुतेः । “किं तत् सहस्र-
मिति । इमे लोकाः, इमे वेदाः ; अथो वागिति ब्रूयात्—” इति
चैतरेयश्रुतिर्भवति । अत्र वागिति मनः प्राणसगर्भाया वाचः षट्कारमहर्गणं प्राह ।
वौक् षट्कारस्यैव च वषट्कारशब्देनाभिधानात् । लोकानां वेदानामप्येषां वाक्त्व-
मिदं नापोद्यते तथाप्येषां पृथक्त्वाभिधत्तस्या ब्राह्मणवसिष्ठन्यायेन पृथगुक्तिः ॥

(२) प्रजापतिरसप्रबर्हणम्

प्रजापतेर्लोकाः । लोकेभ्यो देवाः । देवेभ्यो वेदाः । वेदेभ्यः शुक्राणि । १ ।
पृथिव्या अग्निः । अग्नेर्ऋचः । ऋग्भ्यो भूः । २ । अन्तरिक्षाद्भ्युः । वायोर्ब्रह्मणि ।

यजुर्भ्यो भुवः । ३ । दिव आदित्यः । आदित्यात् सामानि । सामभ्यः स्वरिति
छान्दोग्यश्रुतिः ॥ ४ ॥

(३) चतुष्पाद्ब्रह्मणश्चतुष्कलाः पादाः

लोका दिशः देवाः प्राणा इति चतुष्पाद्रीदं ब्रह्म । तस्यैते चतुःकलाः पादाः ।
प्राचो प्रतीची दक्षिणोदीचीति चतुष्कलो दिक् पादः प्रकाशवान्नाम । १ । पृथिव्यन्तरिक्षं
यौः समुद्र इति चतुष्कलो लोकः पादोऽनन्तवान्नाम । २ । अग्निः सूर्यश्चन्द्रो
विद्युत्—इति चतुष्कलो देवतापादो ज्योतिष्मान्नाम । ३ । प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं मन इति
चतुःकलः प्राणः पाद आयतनवान्नाम । ४ । इति ॥

(४) पञ्चाध्यात्मिकप्राणाः

अध्यात्मं पञ्चानां प्राणानां प्राणो ज्येष्ठः ॥ वाग् वसिष्ठः । चक्षुः प्रतिष्ठा । श्रोत्रं
सपत् । मन आयतनम् । एषु वागाद्युत्क्रमणे मूका अन्धा बधिरा बाला जीवन्ति ॥
प्राणोत्क्रमणे तु सर्वे प्राणा उत्क्रामन्ति तस्मात् प्राण एवैतेषां श्रेष्ठः । प्राण एवायं वसिष्ठः
प्रतिष्ठासंपदायतनम् । तस्मादिमे सर्वे वागादयः प्राणा उच्यन्ते इति भाव्यम् ॥ अद्भ्यः
प्राणः । स आपोमयः प्राणः । तमेता आपः पुरस्ताच्चोपरिष्ठाच्च ॥

(५) चातुःप्राश्यं ब्रह्मौदनम्

चतुर्लोकं चतुर्देवं चतुर्वेदं चतुर्होत्रमिति चातुःप्राश्यं ब्रह्मौदनमाहुः । पृथिव्यन्त-
रिक्षं द्यौराप इति चत्वारो लोकाः ॥ अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्र माः—इति चत्वारो देवाः ॥
ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः—इति चत्वारो वेदाः ॥ होत्रमाध्वर्यवमौद्गात्रं
ब्रह्मत्वमिति चतस्रो होत्राः ॥ १ ॥

(६) परमा विराट्

अर्द्धं मर्त्यम्—अर्द्धममृतम्—इत्येवं द्वेधा विभक्तोऽयमग्निः प्रजापतिरात्मा ।
प्रजा पशुर्वित्तमित्यात्मबन्धवः । बन्धुभिः सहितोऽयमात्मा विराडित्याख्यायते ।
तत्रैते देवाश्च गणदेवाश्च लोकाश्च वेदाश्चेति चतुर्विधाः प्रजाः स्युः । ऋतवः,
छन्दांसि, दिशः, स्तोमा इति चतुर्विधाः पशवः । इन्द्रियाणि तु वीर्याणि ।
तान्यन्तर्हितानि । होत्रका यज्ञाः । तानि बहिर्वित्तानि । स दशभिरेतैर्बन्धुभिः

कृतरूपो विराडात्मा । तत्रैते बन्धवः प्रत्येकं चतुर्धा व्याक्रियन्ते—भर्गः, महः, यशः, सर्वम्—इति ॥

- (१) अग्निः, वायुः, आदित्यः, चन्द्रमाः—इति चत्वारो देवाः ॥
- (२) वसवः, रुद्राः, आदित्याः, विश्वेदेवाः—इति चत्वारो गणदेवाः ॥
- (३) पृथिवी, अन्तरिक्षं, द्यौरापः—इति चत्वारो लोकाः ॥
- (४) ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, ब्रह्मवेदः—इति चत्वारो वेदाः ॥
- (५) वसन्तः, ग्रीष्मः, वर्षा, शरद्—इति चत्वार ऋतवः ॥
- (६) गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्—इति चत्वारि छन्दांसि ॥
- (७) प्राची, प्रतीची, उदोची, दक्षिणा—इति चतस्रो दिशः ॥
- (८) त्रिवृत्, पञ्चदशः, सप्तदशः, एकविंशः—इति चत्वारः स्तोमाः ॥
- (९) वाक्, प्राणः, चक्षुः, मनः—इतीन्द्रियाणि ॥
- (१०) होता, अध्वर्युः, उद्गाता, ब्रह्मा—इति चतस्रो होत्रकाः ॥

स वा एष दशधा चतुः संपद्यते । भर्गः, महः, यशः, सर्वम्—इति ॥ सैषा चत्वारिंशिनी परमा विराट्—इति गोपथश्रुतिर्भवति ॥ ब्रह्म क्षत्रं विदूषलम्—इति चत्वारि वीर्याणि गायत्र्यादिभिश्चतुर्भिश्छन्दोभिरवरुध्यन्ते—इति दिक् ॥

सप्तम पाठे

देवभक्तयः (१)

अथं लोकः, प्रातः सवनम् । वसन्त ऋतुः । गायत्री छन्दः । त्रिवृत्स्तोमः । रथन्तरं साम । अग्नायी पृथिवी इलेति स्त्रीदेवाः । वसवो गणदेवाः । इन्द्रः सोमो वरुणः पर्जन्यः ऋतव इति संस्तविका देवाः । हविर्बहनं देवतानामावाहनं दार्ष्टिर्विषयिकं चेति कर्माणि ॥ इतीमान्यग्निभक्तीनि ॥ १ ॥

अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिनं सवनम् । ग्रीष्म ऋतुः । त्रिष्टुप् छन्दः । पञ्चदशः स्तोमः । बृहत्साम । मध्यस्थानाः स्त्रीदेवाः । रुद्राश्च मरुताश्च गणदेवाः । अग्निः सोमो वरुणः, पूषा बृहस्पतिः ब्रह्मणस्पतिः, पर्वतः कुत्सः विष्णुः वायुरिति संस्तविका देवाः । रसानुप्रदानं, वृत्रवधः, बलप्रयोगश्चेति कर्माणि ॥ इत्येतानीन्द्रभक्तीनि ॥ २ ॥

असौ लोकः, तृतीयसवनम् । वर्षा ऋतुः । जगतीछन्दः । सप्तदशस्तोमः । वैरूपं साम । उत्तमस्थानाः स्त्रीदेवाः । आदित्या गणदेवाः । चन्द्रमा, वायुः, संवत्सरः—इति संस्तविका देवाः । रसादानं, रश्मिभिश्च रसाधारणं, सर्वं च प्रवह्निमिति कर्माणि ॥ इत्यमून्यादित्यभक्तीनि ॥

एतेष्वेव स्थानव्यूहेषु ऋतुछन्दःस्तोमपृष्ठानां भक्तिशेषमनुकल्पयित । शरत्,

अनुष्टुप्, एकविंशः स्तोमः, वैराजं सामेति पृथिव्यायतनानि ॥ हेमन्तः, पङ्क्तिः, त्रिणवः स्तोमः, शाकरं सामेति अन्तरिक्षायतनानि ॥ शिशिरः, अतिच्छन्दाः, त्रयस्त्रिंशस्तोमः । रैवतं सामेति द्युभक्तीनि । इत्याह यास्को निरुक्तकारः ॥ अनुपपन्नं तु तन्मन्यामहे । बन्धुसंपदविरोधान् ॥

वर्यं तु पश्यामः । अग्निः, इन्द्रः, सूर्यः, वरुणः, चन्द्रमाः—इति पञ्चैते देवाः सन्तोति पञ्चैव ता भक्तयः सभवन्ति ॥ तत्र पृथिवी, अन्तरिक्षं, द्यौः, आपः, दिश—इति लोकाः ॥ १ ॥

वसन्तग्रीष्मवर्षा इव शरद्धेमन्तशिशिरा अप्येते त्रय ऋतवस्त्रिस्थाना एव स्युः । न चतुर्थे लोके ऋतवः कल्प्याः । यदि वा तत्रोत्तराख्यश्चतुर्थलोकस्थाः स्युः ॥ २ ॥

गायत्रीत्रिष्टुब्जगन्तश्छन्दांसि देवत्रयभक्तीनि ॥ अनुष्टुप् प्राजापत्या ॥ उष्णिहस्तु गायत्र्योपसंग्रहः ॥ बृहत्या अनुष्टुभि पङ्क्त्या विराजश्चानुष्टुभ्येवोपसंग्रहः ॥ ३ ॥ अथवा सर्वाणि छन्दांसि स्वस्वदेवता सलोकानि । ताश्च देवताः श्रूयन्ते—

अग्नेर्गायत्र्यभवन् सयुग्वोष्णिहया सविता संबभूव ।

अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥ ऋ० १० । १३० । ४ ॥

विराण् मित्रावरुणयोरभिश्चीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भगो अहः ।

विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाकूत ऋषयो मनुष्याः ॥ ऋ० १० । १३० । ५ ॥ इति । त्रिष्टुप्पञ्चदशैकविंशत्रिणवत्रयस्त्रिंशाः पञ्चस्तोमाः पञ्चभक्तयो नेयाः ॥ सप्तदशस्तु स्तोमो मध्यस्थः प्रजापतिभक्तिः पृथगुपपद्यते ॥ ४ ॥ अथ रथन्तरं वैरूपं शाकरमिति त्रीणि सामानि पृथिव्यायतनानि ॥ बृहद् वैराजं रैवतमिति त्रीणि द्युभक्तीनि ॥ वामदेव्यमान्तरोदयं राजनं चान्द्रम् । वारवन्तीयं श्रायणीयं यज्ञायज्ञीयमित्यादीनि सामानि अग्न्यादिभक्तोन्यपि भिन्नप्रस्थानानि ज्ञेयानि ॥

प्राणविद्या (२)

प्राण एवेदं सर्वमेकं ब्रह्म ॥ १ ॥ असत् प्राणः । प्राजापत्यप्राणः । वायव्यप्राणः । ऐन्द्रप्राणः । वैराजप्राणः । चित्यप्राणः । अपित्विप्राणः ॥ इत्येवं प्राणाः सप्तधा विभज्यन्ते ॥ २ ॥

असदिति मृत्योः संज्ञा । बलं प्राणः क्रियेति मृत्यास्तिस्रोऽवस्था भवन्ति ॥ सुप्तावस्थः स्वरूपसन्मात्रो मृत्युर्बलम् ॥ कार्य्यावस्थः कुर्वद्रूपः प्राणः । उत्सादावस्थो रसतः पृथग् भवन् मृत्युः क्रियाः । सर्वेऽप्यन्ये प्राणा अस्यैवासतः प्राणस्य प्रभेदाः स्युः ॥ ३ ॥

ऋग्यजुःसामानोति त्रयी विद्या ब्रह्म । सेयममृता सत्या वाक् । स प्रजापतिः ।
सोऽग्निः । स एवैते त्रयोऽग्नयस्त्रयः प्राणाः प्राजापत्याः ॥ ४ ॥

अथ प्राणापानव्यानास्त्रयः प्राणा वायव्याः ॥ अपानः पृथ्वीप्राणः । व्यानोऽन्त-
रिक्षप्राणः । प्राणो दिव्यः स्पृत् प्राणः ॥ प्राणापानसमानोदानव्याना इति वा पञ्च
वायव्याः प्राणाः । यः प्राणः स उदानो विपर्यस्तः ॥ ५ ॥

अथो मनोवाक्प्राणचक्षुःश्रोत्राणोति पञ्चामी ऐन्द्राः प्राणाः । मनश्चन्द्रमाः
सोमः । वागग्निः पार्थिवः । प्राणो वायुरान्तरिक्षयाग्निः । चक्षुरादित्य इन्द्रो दिव्याग्निः ।
श्रोत्रं दिशो दिक्सोमः ॥ ६ ॥

अथ मरोच्यत्री । अथर्वा भृग्वङ्गिरसौ । पुलस्त्यपुलहौ । क्रतुदत्तौ । वसिष्ठा-
गस्त्यौ । विश्वामित्रः—इत्येते द्वादशर्षयो वैराजप्राणाः । कश्यपो मारीचः । अथ
जमदग्निः । गृत्समदापरनामा शौनक—इति भार्गवौ ॥ दध्यङ्ङाथर्वणः उत्थ्यो
बृहस्पतिः संवर्तो घोरः कण्वो गोतमो भारद्वाजो वामदेव—इत्येवमादय एकविंशिनोऽङ्गि-
रसः ॥ ७ ॥

अथ ऋषयः । पितरो । देवाः । असुराः । मनुष्याः । गन्धर्वाः । पशव इति सप्तैते
चित्याः प्राणाः । सप्त ऋषयः । सप्त पितरः । त्रयस्त्रिंशद्देवाः । नवनवतिरसुराः ।
अण्डजाः पिण्डजा ऊष्मजा उद्भिजा इति चत्वारो मनवो मनुष्याः । गन्धर्वाः सप्त-
विंशतिः । पुरुषाश्चगवाव्यजाः पञ्च पशवः । ऋतवश्छन्दांसि । इत्यादयोऽन्येऽपि प्राणा
इष्यन्ते ॥ तेषां पशुष्वेवान्तर्भावः ॥ ८ ॥

अथाग्नेयाः सौम्या वायव्याः आप्याः परोरजस इत्येवं चैते प्राणाः पञ्चधा ।
ते प्राणानां वर्गविशेषाः पूर्वोक्तेष्वेवापित्विनः सन्तीति नातिरिच्यन्ते ॥ ९ ॥

(७) त्रिविधा विराडात्मानः

अथ यदिदं कचित् किञ्चिदेकैकं परिदृश्यते तत्सत्त्वं स विराडात्मा स प्रजापति-
रिति विद्यात् । तथा च श्रूयते—“एतद्वा अस्ति, एतद्वचस्पृतम् । यद्वचस्पृतं तद्वचरितं ।
एतद् तद्—यन्मर्त्यम् । स एष प्रजापतिः । सर्वं वै प्रजापतिः ॥” (शत० ४।४।८।२) ॥
स च वागधिष्ठितप्राणाधिष्ठितमनोमयस्त्रिवृदयमेकैकः सर्वो विराडात्मा ।

तत्रायं वागग्निर्द्विविधो मर्त्योऽमृत इति भेदात् ॥ चित्याग्निर्मर्त्याग्निः । चितेनि-
धेयोऽग्निरमृताग्निः । चित्याग्निमयोऽयं दृश्यः स्पृश्यः पिण्डो बिम्बः । तमनुपरितो-
ऽतिदूरमभिव्याप्नुमानोऽमृताग्निरेव साहस्रम् ॥ मूर्तिर्बिम्बः । छाया मण्डलं साहस्रम् ।
मूर्तिरात्मा तत्पदम् । छाया मण्डलं प्राणाः । तदिदं पुनः पदम् ॥ बिम्बभेदात्
साहस्राणि भिद्यन्ते ॥

तथा चयमेषा मनः प्राणसगर्भावाक् द्वेधा भूत्वा स्वां संस्थांमातनुते । अन्तर्धा बिम्बो बहिर्धा साहस्रं चेति ॥

अनन्ताश्चैते विराडात्मानः । ते संकलयन् त्रेधा विभज्यन्ते । एकस्तावदीश्वरः । तत्र ये बहवोऽवतारास्ते द्वितीयाः । तेषु येऽमी अनन्ता जीवास्ते तृतीयाः—इति ॥ स्वयंभू-परमेष्ठिपूर्यचन्द्रपृथिव्यादयोऽमी ईश्वरावतारास्तेऽमी ईश्वरगर्भस्था अनुवर्तन्ते । अवतारपृष्ठस्थाश्चामी अनन्ता जीवा बहुधा प्रकल्प्यन्ते । यथैतस्यां पृथिव्यां धातुजीवा मूलजीवाश्चेतनजीवाः स्युः । चेतनेषु चोष्मजाः पिण्डजा जरायुजाः स्युः ॥

तेऽमी जीवाश्चावताराश्चेश्वरश्चेत्येते सर्वे वाङ्मयाः प्राणमया मनोमयाः पुरुषा उपपद्यन्ते । सर्वे चैते बिम्बसाहस्राभ्यां द्विसंस्था उपपद्यन्ते । तेषां त्रयाणां । विराडात्मनां प्रजापतीनां प्रथमं सर्वव्यापि यदीश्वरसाहस्रं तत्रायमोऽशब्दः ॥ अकारो मनः । उकारः प्राणः । मकारो वागिति संकेतः ॥ तेन वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः स विराडात्मा ओमिति व्याह्रियते ॥ येऽवतारा ये चैते जीवाः सर्वेऽप्यमी आमिति व्याहृत्या परेगृह्यता भवन्ति । तत्प्रविष्टत्वात् सर्वेषाम् । अवतारजीवयोस्तु पृथक्त्वेन प्रतिपत्त्यर्थं क्रमेणाहः शब्दोऽहं शब्दश्च नियम्येते ॥ ईश्वरेऽस्मिन्नवतारेषु जीवेषु वा क्रमेणेदं साहस्रमहोत्यभिव्याप्नोतीति कृत्वा ओमित्युच्यते अहर्वा अहं वा ॥ त्रयाणामप्येषां पूर्वो भागोऽयमहोति सिद्धोऽभिज्ञायते ॥ तत्र तावन् परब्रह्मविद्यायां प्रथमोऽयं “मः कारः” पूर्णं पदं भवति । ईश्वरस्यैव स्फोटरूपतया तस्येतरपदगर्भित्वाभावात् । परब्रह्मविद्यानुरूपा हि शब्दब्रह्मविद्या भवति । तेनैतस्यां शब्दब्रह्मविद्यायामयमहोति हकारः पदान्तोऽभिज्ञायते तत उत्त्वमापद्यते ओमिति भवति ॥ इतरयोस्त्ववतारजीवयोरीश्वरादीतरपदगर्भितया पदान्तत्वं नास्तीत्यावेदयितुं तद्वाचकशब्दविद्यायां हकारः प्रकृत्यावतिष्ठमानः परेण स्वरेण संयुज्यते ॥ अहः अहमिति । ईश्वरजीवयोश्चैतन्येन सौसादृश्यमस्तीत्यावेदयितुं तयोरमित्येतेनैकेन निपातेन स्वरूपकरणं क्रियते । ओम्—अहमिति ॥ ततोस्ति वैरूप्यं किञ्चिदवतारेष्वित्यावेदयितुमस्मिन्मध्यमेऽवतारे अन्शब्दः प्रयुज्यते अहमिति ॥ तथा च श्रूयते—असौ स आ देत्यो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः । तस्योपनिषदहरिति ॥ अथ योऽयं दक्षिणेक्षन्पुरुषः तस्योपनिषदहमिति ॥ ओम्—अहः—अहम्—इत्येतेषां त्रयाणां बिम्बसाहस्राभ्यां कृतरूपतायाः साम्येऽपि सूर्यादिष्ववतारेष्वेवेदं साहस्रमद्वा परिदृश्यते । तस्मात् तान्येवाहानि विशेषत आदिश्यन्ते । अहं सूर्य इवाजनोति मन्त्रश्रुत्या जीवेषु च तान्यतिदिश्यन्ते—इति बोध्यम् ॥

अहामेषां यः परमोऽन्तः स प्रधिः । आबिम्बनाभेराचैतत्साहस्रप्रधेश्चायमेको

विराडात्मा । यथा सूर्योऽयमेक आत्मा । सूर्यस्यायं दिविष्ठो मूर्तः पिण्डो बिम्बः । तस्य च परितोऽभिव्याप्तै रश्मिभिः कृतं ज्योतिर्मण्डलमहः । एवं प्रत्यर्थं विद्यात् । तत्र च स्वयं ज्योतिषां ज्योतिष्मत् तदहः । परज्योतिषामर्द्धमेव ज्योतिष्मत् । अथार्द्धं ज्योतिर्विरुद्धं तमः । रूपज्योतिषां रूपमयमेवाहः । अज्योतिषां त्वज्योतिस्तदहः । यद्यप्यज्योतिषां तदहर्न गृह्यते तथापि तत्र नास्तीति विद्यात् । अह्नां वेदत्वाद् वेदस्य च प्रतिष्ठा ब्रह्मणो वस्तुसत्तानित्यत्वात् ॥

“एकं वा एतद्देवानामहर्यत् संवत्सरः—” इति (तां० १६ । ६ । ११ भाष्ये) श्रुतेः अहोऽस्य ज्योतिषएकत्वेऽपि तत्र त्रयस्त्रिंशद्विभक्तिव्यवच्छेदकानां सोम वरुणासुरप्राणानां रात्रिः संज्ञा । अह्नां त्रयस्त्रिंशत्त्वात् त्रयस्त्रिंशदेव तत्रैता रात्रयो भवन्ति । ये चाहोरात्रयोः सन्धयः ते वैष्णवाश्च भवन्ति । ऐन्द्राश्चेति द्विविधा इष्यन्ते । इन्द्रविष्णू हि सयुजौ सहस्रं व्यैरयतः । तत्रायं विष्णुस्त्रिविक्रमः पृथिव्याः सकाशादूर्ध्वं त्रीन् विक्रमान् त्रिवृत् पञ्चदशैकविंशान् विक्रममाणस्तत्र तत्राहोरात्रसंधिस्थानमाक्रमते । इन्द्रस्त्वयमस्मात् पृथिवीहृदयादारभ्य त्रयस्त्रिंशतं यावदुत्क्रमते तत्रायं विष्णुरापोमयः स्याद्—इन्द्रः पुनरयं वाङ्मय—इति विद्यात् ॥

(८) पारिलविकाहोरात्रपर्वाणि

अह्नां चैषां त्रेधा विभक्तयो भवन्ति—पारिलविका आभिलविकाः पृष्ठ्याश्चेति । तिर्य्यग् विभक्तयः पारिलवाः । तानि च त्रीणि शतानि षष्ठ्यधिकान्यहानि स एकः संवत्सरः ॥ १ ॥ अशीतं शतमहामेकं पर्व । तदयनम् । द्वे अयने संवत्सरः ॥ २ ॥ विंशं शतमहामेकं पर्व । तच्चतुर्मास्यम् । त्रीणि चातुर्मास्यान्येकः संवत्सरः ॥ ३ ॥ अह्नां षष्ठिरेकं पर्व । स ऋतुः । षड् ऋतवः संवत्सरः ॥ ४ ॥ त्रिंशदहान्येकं पर्वसमासः । द्वादशमासाः संवत्सरः ॥ ५ ॥ पञ्चदशाहान्येकं पर्व । सोऽर्द्धमासः । चतुर्विंशतिरर्द्धमासाः संवत्सरः ॥ ६ ॥ अह्नां विभाजिकायाः परिभ्रितो रात्रिः संज्ञा । अहश्च रात्रिश्चेति द्वे अहनी वासरः । सप्तशतानि विंशतिश्चाहोरात्राण्येकः संवत्सरः ॥ ७ ॥

संवत्सरोऽग्निः । तस्यैतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत् । इति वाजिश्रुतिः । संवत्सरोऽग्निः । वाक् संवत्सरः । यदग्निर्विभज्यते । वाचमेव तद् विभजन्ति (१०।१२) इति च ताण्ड्यम् । अग्निः संवत्सरः । सूर्यः परिवत्सरः । चन्द्रमा इदावत्सरः । वायुरनुवत्सरः । इति च ताण्ड्यश्रुतिः ॥ १७ । १३ ॥

(९) आभिलविकाहोरात्रस्तोमाः

अथोत्तराधरविभक्तयोऽभिलवाः । त्रिविधास्तु सूर्योऽभिलवा भवन्ति ज्योतिर्गो-

रायुश्चेति । निराकारोऽग्निप्राणो यावदेव सोमं दहति तावज्ज्योतिः ॥ विष्णुप्राणो गोविन्दः । इन्द्रप्राण आयुरात्मा । ज्योतिषस्तावदस्माद् ज्योतिर्मयास्त्रयस्त्रिंशद्देवाः उपपद्यन्ते । अथ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः सर्वाणि च भूतानि गोभिः सृज्यन्ते । अथ सर्वेषामेषां भूतभौतिकजातानां प्राणिनां विज्ञानान्यात्मानोऽमी आयुषः संभवन्ति । अरा इव रथनाभौ यत्रोपसृष्टेभ्यः पञ्चदेवेभ्यो वाक् प्राण चक्षुः श्रौत्राणि प्राणा आविर्भवन्तो लक्ष्यन्ते स आयुरात्मा । स इन्द्रः । यज्ञो वा आयुरिति ताण्ड्यम् ॥ ६ । ४ । ४ ॥ त्रयाणामप्येषां सहस्रं सहस्रभक्तयः कल्प्याः । “यावद्वै सहस्रं गाव उत्तराधरा इत्याहुस्तावदस्माज्जोकात् स्वर्गो लोक इति” तां० १६ । ८ । ताण्ड्यश्रुतौ गवामितरोपलक्षणत्वात् ॥ अत एवैतं सूर्यं सहस्रांशुमाचक्षते । सहस्रं चैतेऽहर्गणा बिम्बपृष्ठात् प्रधिपर्यन्तमातताः परितः संपद्यन्ते । तान्येव च सहस्रं पृष्ठानि सहस्रवर्त्मा सामवेदो नाम ॥

तत्रैताः सहस्रं गावो देवेभ्यः सर्वाणि दुग्धानि दुहते । तासु त्रीणि शतानि । त्रिंशच्च त्रीणि च गावो वसूनाम् । तावदेव रुद्राणाम् । तावदेवादित्यानाम् । अथ या तासामेकाऽवशिष्यते सा प्राजापत्या त्रिरूपा कामगवी ॥ तथा च श्रूयते—“प्रथमेऽहं-स्त्रीणि च शतानि नयति त्रयस्त्रिंशतं च । एवं द्वितीयेऽहन् । एवं तृतीयेऽहन् । अथैषा साहस्री अतिरिच्यते । सा वै त्रिरूपा स्यादित्याहुः । एतद्धवस्यै रूपतममिवेति । रोहिणी हवैवोपध्वस्ता स्यात् । एतद्धैवास्यै रूपतममिव । वाग् वा एषा निदानेन यत् साहस्री । अयातयाम्नी वा इयं वाक्”—इति ॥ (श० ४ । ४ । ६ (१)) ॥ अथ या सहस्रतम्यासीत् तस्यामिन्द्रश्च विष्णुश्च व्यायच्छेताम् । स इन्द्रोऽमन्यत—न वा इदं विष्णुः सहस्रं प्रार्थ्यते इति तस्यामकल्पेताम् । द्विभाग इन्द्रः । तृतीयो विष्णुः । तदेवैषाऽभ्यनूच्यते—“उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे न पराजिग्ये कतरश्चनैनोः । इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम् ॥” इति च तैत्तिरीयश्रुतिर्भवति ॥

(१०) पृष्ठ्याहोरात्रस्तोमाः

अथैतस्मिन् सहस्रे विभागान्तराणि चोपपद्यन्ते—त्रिवृत्, पञ्चदशः, सप्तदशः, ११, २७, ३३, २५, २६, ३४, ३६, एकविंशः, सप्तविंशः, त्रयस्त्रिंशः ॥ पञ्चविंशः । ऊनविंशः । चतुस्त्रिंशः । षट्त्रिंशः । २४, ४४, ४८, चतुर्विंशः । चतुश्चत्वारिंशः । अष्टाचत्वारिंशः—इति । तान्येतान्येषामह्नां पृष्ठान्युच्यन्ते । पृष्ठ्या ह्येते विभागाः स्युः ॥ तत्र त्रयस्त्रिंशदहर्गणे षट्स्तोमाः स्युः ।

अह्नां समूहकृप्तिः स्तोमः । त्रिभ्य उपरिष्ठात् षड्भिः षड्भिरहोभिः पञ्चस्तोमाः सिध्यन्ति । त्रिवृत् । पञ्चदशः । एकविंशः । त्रिणवः । त्रयस्त्रिंशश्चेति । अथैतस्य त्रयस्त्रिंशदहर्गणस्यार्द्धेन सप्तदशः स्तोमः कल्प्यते । इत्थं षट्स्तोमा षड्कारः ॥ अकारो मनः । प्राण उकारः । ताभ्यां गर्भिता वागियं वौक् । तस्याः षड्भक्तिकरणं वौक् षट्कारः । संहितायां कलोपः ॥ अथवा उकाराकारौ प्राणमनसौ वकारः । अकारोकारौ मनःप्राणा वकारः । प्रभ्यारब्धो नभ्यो वकारः । नभ्यारब्धः प्रधिरोकारः । ताभ्यां संस्था लक्ष्यते । तस्याः स्तोमप्रकारः षट्कारो वौषट्कारः स षड्कारः । तत्र त्रिवृत् पृष्ठः पृथिव्यग्निः ॥ पञ्चदशपृष्ठोऽन्तरिक्षाग्निः । एकविंशपृष्ठः सूर्याग्निः । त्रिणवपृष्ठो भास्वरसोमः । त्रयस्त्रिंशपृष्ठो दिक् सोमः । इत्थमेते त्रयस्त्रिंशदहर्गणा दैवतस्तोमा भवन्ति ॥

अथ यश्चतुस्त्रिंशः स्तोमः सोऽयं चतुस्त्रिंशद्व्याहृतिकः प्रजापतिः । स नाक इति ताण्ड्यम् ॥ यस्त्वन्तरतः पञ्चविंशः स्तोमस्तन्महाव्रतम् । स इन्द्रो विद्युत् । स कामप्रो लोकः । अथ सप्तदशमारभ्य पञ्चविंशं यावदयं त्रिवृदग्निस्त्रिणाचिकेतो नाम स्वर्ग्याग्निः । तत्र त्रयो नाचिकेता नामाग्नयो भवन्ति—सप्तदशः संवत्सरो नाम । एकविंशो ब्रध्नो नाम । पञ्चविंशोऽयं विद्युन्नामेति ॥ अथ षट्त्रिंशस्तोमो गोसवो देवनिर्मितो भवति । अष्टाचत्वारिंशदहर्गणास्तु छन्दोमाः स्तोमा इष्यन्ते । चतुर्विंशो गायत्रः । चतुश्चत्वारिंशस्त्रैष्टुभः अष्टाचत्वारिंशो जागत इति भेदात् । “तम इव वा एतान्यहानि यच्छन्दोमाः” । इति ताण्ड्यम् । १४ । १२ ॥

ते चैते स्तोमा अभिप्लवभेदात् त्रेधा भिद्यन्ते—ज्योतिष्टोमो गोष्टोमः आयुष्टोम इति ॥ ज्योतिषामह्नां समूहकृप्तिर्ज्योतिष्टोमः । गवां गोष्टोमः । आयुषामायुष्टोमः । तत्रैतानि ज्योतीषि देवानां गावो भूतानामायुष्यात्मनां योनयो विज्ञायन्ते ।

तत्राऽयं ज्योतिष्टोमश्चतुष्टोमः संपद्यते सप्तस्तोमो वा । अग्निष्टोमः । उक्थस्तोमः । अतिरात्रस्तोमः । षोडशीस्तोमः—इति चत्वार एव प्रधानतः स्तोमा इष्यन्ते ॥ तत्र वागुपनिषत्कीऽग्निरेवाहानि । यावदग्निस्तदहः । अहामेव षण्णां षण्णां स्तोमोऽग्निष्टोमः । तानि चैतानि त्रयस्त्रिंशदहानि वितायन्ते ॥ तेषामह्नां विभक्तयो रात्रयः । अहश्चोभयतो रात्रिर्भवति । तत्रोत्तराहसंहिता पूर्वारात्रिरतिरात्रम् । रात्रिमतीत्यपरदिनपर्यन्तं वर्तते इत्ययं क्रतुरतिरात्रः—इत्याह भाष्यकारः ॥ षण्णां षण्णां रात्रीणां स्तोमोऽतिरात्रस्तोमः । योऽतिरात्रः सा रात्रिः । अथ नाहो न रात्रिः । किंतु येऽहोरात्राणां सन्ध्यस्तेषां षण्णां षण्णां स्तोम उक्थस्तोमः । तत्र या रात्रिः स सोमः । यत्र सन्धिः स विष्णुः ।—“अग्निर्वा अहः । सोमो रात्रिः । अथ यदन्तरेण

तद् विष्णुः । एतद्वै परिस्रवमानं संवत्सरं करोतीति श्रुतेः ।” (श० ३ । ३ । ५ । १५)
न चायं विष्णुरिन्द्रेण विनाकृतो दृश्यते । तथा च—“विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो
व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा” इति मन्त्रश्रुतेरिन्द्रविष्णू सयुजौ सन्धी भवतः ।
तत्र पञ्चदशस्तोत्राण्युक्थस्तोमो वैष्णवः सन्धिः । षोडश तु स्तोत्राणि षोडशिस्तोमः ।
स ऐन्द्रः सन्धिरिति विद्यात् ॥ अपि च श्रूयते—“अग्निर्वा अग्निष्टोमः । ऐन्द्राग्नानि
वा उक्थानि ॥ इन्द्रो वै षोडशी । सारस्वतं रात्रे रूपं क्रियते इति ॥ वैष्णव-
एवायं सन्धिरैन्द्राग्नोऽपीष्यते । यैव च सौम्या रात्रिस्तामिदानीं सारस्वतीमाह ॥

अथ ये पुनरेष्वहःसु बार्हस्पत्या भागा वाजसोमा अन्ननिर्विष्टाः प्रतिपद्यन्ते तेषां
स्तोमो विधीयमानो वाजपेयस्तोमः । बृहस्पतिश्चायं पुनर्वसुपुष्यनक्षत्रस्थः । वाजपेयं
मारुतं प्राजापत्यं चेत्यपि प्राहुः ॥ ये पुनराप्नोर्यामास्तेषां स्तोमा विधीयमाना आप्नो-
र्यामस्तोमः । अपि चाग्निष्टोममेवानुक्रियतेऽत्यग्निष्टोमः । तदित्थ मेभिरतिरिक्तै स्त्रिभिः
स्तोमैः सप्तसंस्थोऽयं ज्योतिष्टोमः संपद्यते ॥ तेऽमी आभिसविकाश्चत्वारः स्तोमाः आ-
ख्याताः ॥ चत्वारोऽप्येकविंशस्तोमा एव क्रियन्ते नतूर्ध्वं वितायन्ते । तथा च त्रिवृत्
पञ्चदशः सप्तदश एकविंश इत्येतैश्चतुर्भिरेव पृष्ठयस्तोमैः संपन्नत्वाच्चतुष्टोमा एवैते
चत्वारोऽपि स्तोमाः संपद्यन्ते इत्यवधेयम् ॥

अह्नां स्तोमेऽप्यहःशब्दो न निवार्यते । यवराशौ यवशब्दवत् । तेनैते स्तोमा अप्य-
हानि व्यपदिश्यन्ते इति बोध्यम् ॥ सूर्ये तावदियं स्तोमकल्पितिराख्याता । एवं पृथि-
व्यामन्यत्रान्यत्र च विज्ञातव्येति दिक् ॥

(११) स्तोमबन्धुता

त्रिवृदादिस्तोमानां लोकानुबन्धितया क्रमिकत्वेऽपि ताण्ड्यश्रुतिरेषां धर्मानुबन्धित्व-
माख्याय मतान्तरेण क्रमिकत्वं प्रत्याचष्टे । तथा हि—“अग्निना पृथिव्यौषधिभिस्तेनायं
लोकस्त्रिवृत् ॥ वायुनाऽन्तरिक्षेण वयोभिस्तेनैष लोकस्त्रिवृत्—योऽयमन्तरा ॥ आदित्येन
दिवा नक्षत्रैस्तेनासौ लोकस्त्रिवृत् ॥ एतदेव त्रिवृत् आयतनम्, एषाऽस्य बन्धुता ॥ तमु
प्रतिष्ठेत्याहुः ॥ त्रिवृद्धयै वैषु लोकेषु प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥

अर्द्धमास एव पञ्चदशस्यायतनम् । एषाऽस्य बन्धुता ॥ तम्वोजो बलमित्याहुः ॥
अर्द्धमासशो हि प्रजाः पशवः ओजो बलं पुष्यन्ति ॥ २ ॥

संवत्सर एव सप्तदशस्यायतनम् ।—द्वादशमासाः पञ्चर्तवः । एतदेव सप्तदश-
स्यायतनम् । एषाऽस्य बन्धुता ॥ तमु प्रजापतिरित्याहुः । संवत्सरं हि प्रजाः पशवोऽनु-
प्रजायन्ते ॥ ३ ॥

आदित्य एवैकविंशस्यायतनम् ।—द्वादशमासाः, पञ्चर्तवः, त्रय इमे लोकाः ।

असावादित्य एकविंशः ॥ एतदेवैकविंशस्यायतनम् । एषाऽस्य बन्धुता ॥ ७ ॥ तमु
देवतल्प इत्याहुः ॥ ८ ॥ त्रिवृदेव त्रिणवस्यायतनम् । एषाऽस्य बन्धुता ॥ ९ ॥ तमु पुष्टि-
रित्याहुः । त्रिवृद्वयैव पुष्टः ॥ १० ॥ देवता एव त्रयस्त्रिंशस्यायतनम् । त्रयस्त्रिंशद्दे-
वताः । प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशः । एतदेव त्रयस्त्रिंशस्यायतनम् । एषाऽस्य बन्धुता ॥ ११ ॥
तमु नाक इत्याहुः । नहि प्रजापतिः कस्मै च नाकम् ॥ १२ ॥ छन्दांस्येव छन्दोमाना-
मायतनम् । एषैषां बन्धुता ॥ १३ ॥ तानु पुष्टिरित्याहुः । पशवो हि च्छन्दोमाः
॥ १४ ॥ (तां० १० । १ ख)

(१२) सामक्लृप्तिः

उद्गीथरसावलम्बी वागध्यूढः प्राणः साम ॥ १ ॥ वाक्प्राणमनोभिरारब्धं
खल्वदमेकैकं सकलं सत्त्वम् ॥ तत्रेयं वाग् मा—प्रमा—प्रतिमाप्रभृतिच्छन्दः-
प्रभेदानां मध्यतः केनचिच्छन्दसा छन्दिता सती ऋगित्युच्यते । ऋच्यध्यूढः प्राण
एवायं वितायमानः सामाख्यां लभते ॥ तयोश्च ऋक्सामयोरारम्भणं प्रणवः प्रतिष्ठा
च प्रणवः ॥ अथ साम्नस्तु ऋगध्यूढस्य मध्यमा भक्तिरुद्गीथः । वाक्प्राणावृक्सामे
उद्गीथेऽस्मिन्नक्षरे संसृज्येते ॥ २ ॥

सर्वत्रैव तु ते ऋक्सामे अन्योन्यमविनाभूते भवतः । तद्यथा—इयं पृथ्वी ऋक्—
तत्राध्यूढोऽयमग्निः साम । अन्तरिक्षमृक्—वायुः साम । द्यौर्ऋक्—आदित्यः
साम । नक्षत्राणि ऋक्—चन्द्रमाः साम । ऋच्यध्यूढं साम गीयते ॥ आदित्यस्य शुक्ला
भा ऋक् । तत्र नीलं परः कृष्णं साम । या चैयमदणः शुक्ला भाः सा ऋक्—अथ
यन्नोलं परः कृष्णं तत्साम । ऋच्यध्यूढं साम गीयते ॥ ३ ॥

ऋचमनु सामेदं शश्वत् साध्वेवानुवर्तते न त्वेव जात्वेतामृचमात्मानमतिपातयति ।
तस्मात् साधुनि साधुत्वे च सामशब्दः, असाधुनि चासाधुत्वे च तद्वदसामशब्दोऽभि-
निर्वर्तते । अपि चेदमृचि साम्येन सामानुवर्तते । यावतीयमृक् तावदेवेदं सामापि
तत्राभिव्याप्नोति तस्मात् साम नाम ॥ अथ ऋगायतनापेक्षया वितायमानत्वाद् बृहदा-
यतनमपीदं सामसंमितमृचांशैर्भवति तस्मात् साम नाम । “ऋचा समं मेने” इति
नैदाना इत्याह यास्को निरुक्ते (दै० ७ । १२ । ४) ॥ तिसृभिर्ऋग्भिः समं सामे-
त्याहुः । विष्कम्भस्य हि ऋक्त्वमभिप्रयन्ति । पृष्ठस्य च सामत्वम् । विष्कम्भत्रयसमं
हि तत्पृष्ठं भवतीति तृचं सामोपपद्यते ॥ ४ ॥

साम देवानामन्नमिति ताण्ड्यम् । ६ । ४ । १३ ॥ अथ लोके सौन्दर्यं द्विविधं
भवति भगः सामेति । यत्रेतरानपेक्षं प्रातिस्विकं सौन्दर्यं तद्भगनिबन्धनं सौभगं नाम ।

अथ यत्र तु शिल्पादावितरेणानुरूप्यं प्रातिरूप्यं वा तद्धेतुस्तत्रेदं सामैव मनो हरतीति विद्यात् ॥ ५ ॥

तस्यैतस्य साम्नः पञ्चभक्तयो भवन्ति—हिंकारः । प्रस्तावः । उद्गीथः । प्रतीहारः । निधनम्—इति । संतानारम्भणं वितानोपक्रमणं वा हिंकारः ॥ उद्ग्राभनिग्राभयो-
रभिक्रान्तापक्रान्तयोरुत्थानपतनयोर्व्यवच्छेदकं मध्यमं पदमुद्गीथम् । यत्रोपसंहारोऽ-
वसायस्तन्निधनम् । हिंकारं चोद्गीथं चान्तरा भक्तिः प्रस्तावः । उद्गीथं च निधनं
चान्तरा भक्तिः प्रतीहारः । केचित् हिंकारोद्गीथयोर्गर्भे प्रस्वाव आदिरिति द्वे उद्गीथनि-
धनयोर्गर्भे प्रतीहार उपद्रव इति द्वे—इत्थं सप्तभक्तिकं सामाचक्षते । तत्रैतयोर्न विशेषः ।
विवक्षाधीनत्वाद् भक्तीनाम् ॥ ६ ॥

प्रत्यर्थं चैतत् साम प्रतिपद्यते । तद्यथा—रथन्तरं वैरूपं शक्यं इति पृथिव्याः
सामानि । बृहद्वैराजं रेवत्य इति दिवः सामानि ॥ अभिमन्थनं धूमः प्रज्वलनमङ्गारा
उपशमः इत्यग्नौ प्रोतं रथन्तरम् । अभ्रसंश्रवो मेघो वर्षा विद्योतते उद्गृह्णातीति पर्जन्ये
प्रोतं वैरूपम् । पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशः समुद्र इति लोकेषु प्रोताः शक्यः ॥ उद्यन्मुदितो
मध्यन्दिनोऽपराहोऽस्तं यन्निति बृहदादित्ये प्रोतम् । पञ्चर्तवो वैराजमृतुषु प्रोतम् ॥
अजा अवयो गावोऽश्वाः पुरुषः—इति पशवो रेवत्यः ॥ पशवो बृहद्रथन्तरे । अपि
चाहुः । ऐरं बृहत्—ऐडं रथन्तरम् ॥ १ ॥ मनो बृहत्—वाग् रथन्तरम् ॥ २ ॥ साम
बृहत्—ऋग् रथन्तरम् ॥ ३ ॥ प्राणो बृहत् अपानो रथन्तरम् ॥ ४ ॥ असौ लोको
बृहत्—अयं रथन्तरम् ॥ ५ ॥ अपृष्टं वै वामदेभ्यमनिधनं तदनाथतनम् ॥ अथ
राजनं चन्द्रमसः साम । अग्निर्वायुरादित्यो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति राजनं देव-
तासु प्रोतमित्याहुः ॥ वारवन्तीयं श्रायन्तीयं यज्ञायज्ञियमिति सामानि भवन्ति ॥
अश्रयन् वाव श्रायन्तोयेन । अवारयन्त वारवन्तीयेन ॥ इन्द्रियस्य वा एषा वीर्यस्य
परिगृहीतिरिति ता ए च्यम् ॥ १८ । ११ । १ । (मै० ४ । ४ । ६) सर्वाङ्गान्येकं रूपं
यज्ञायज्ञियम् । ऋक्सामयजुषां रसो (मै० ४ । ४ । ६) यज्ञायज्ञियम् एकविंशान्तं
वारवन्तीयं वैष्णवम् । चतुस्त्रिंशान्तं श्रायन्तीयं ब्राह्मम् । त्रयस्त्रिंशान्तं यज्ञायज्ञी-
यमैन्द्रमिति भावयेत् । बहूनि चान्यानि सामानि यज्ञमधुसूदने यज्ञविटपाध्याये
द्रष्टव्यानि ॥

इति षष्ठः पाठः ॥ ६ ॥

ऋतवः

ऋतं च सत्यं चेति द्वे भूते । ऋतमशरीरं सशरीरं सत्यम् । आपो वायुः सोम इति
ऋतानि । अग्नियमादित्याः सत्यानि । अग्निरपि धर्मः ऋतम् । ऋतयोरग्नीषोमयोः

संस्तुष्टितारतम्यात् सिद्धानि जगदुत्पत्तिप्रयोजकानि रूपाणि ऋतवः ॥ प्रत्यर्थभिन्ना
ऋतवः ॥

उत्तरायणदक्षिणायने अग्नोषोमौ संवत्सरः । संवत्सरविभागा ऋतवः । अहोरात्रे
अग्नीषोमौ वासरः । वासरविभागा ऋतवः ॥ १ ॥ अग्निऋतुः । सूर्य्य ऋतुः । चन्द्रमा
ऋतुः ।—इति तैत्तिरीयाः ॥ (तै० ब्रा० ३ । १० । १) ॥ शतोत्पणवर्षा चातुर्मास्यानि
त्रय ऋतवः ॥ २ ॥ वर्षाशरच्छीतवसन्तग्रीष्मकाला द्वासप्ततिर्वासराः पञ्चर्तवः । ते
च दक्षिणायणदिवसारब्धाः षोडशचत्वारिंशत् षोडशवासरैस्त्रिसवनविभक्ताः स्युः ॥ ३ ॥
वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिराः षष्टिवासराः षड् ऋतवः । ते च वसन्तसंपातप्राक्तन-
त्रिंशत्तम दिवसारब्धाः स्युः ॥ ४ ॥

छन्दांसि

छन्दनं छन्दः । येन वा चञ्चल्यते तच्छन्दः । यथेच्छाचारित्वप्रतिबन्दीधर्मश्छन्दनम् ॥
वाक् छन्दः । प्राणश्छन्दः । वाचा प्राणः प्राणेन च वाक् छन्द्यतेऽवच्छिद्यते
तस्माच्छन्दः । मा प्रमा प्रतिमाऽस्त्रीवयश्चेति चत्वारि प्राणमयानि, वर्णमात्रागणभेदात्
त्रीणि वाङ्मयानीति सप्तैतानि छन्दांसि ॥ व्यक्तिभावप्रधाने दिग्देशकालसंविद्संख्या-
रूपेऽवच्छेदे पृथिवीलोके माशब्दः । आकृतिभावप्रधानेऽणुत्वमहत्त्वह्रस्वत्वदीर्घत्व-
नियामकर्षणनिवेशरूपेऽवच्छेदेऽन्तरिक्षलोके प्रमाशब्दः ॥ जातिभावप्रधाने समान-
द्रव्यगुणकर्मरूपेऽवच्छेदे द्युलोके प्रतिमाशब्दः ॥ अन्नरूपेऽवच्छेदे दिद्वस्त्रीविशब्दः ॥
तान्येतानि देवच्छन्दसानि चत्वारि ॥ अशीत्यक्षरव्यूहे सिन्धुशब्दः । सेयं मा छन्दसि
संविद्धा संख्या वा । समुद्रश्छन्द इत्यादीनि तु यजुर्वेदोक्तानि प्रमाछन्दांसि द्रष्टव्यानि
आकृतिप्राधान्यात् ॥ अथ शिल्पं छन्दः । यदपूर्वं यच्च प्रतिरूपं तच्छिल्पम् ॥ आत्म-
संस्कृतिः शिल्पम् ॥ ब्राह्मणादिवर्णधर्मप्रयोजकाः संस्काराश्छन्दांसि ॥ संवेश उपवेश-
श्छन्दांसि ॥ दिग्देशमात्रावच्छेदा वयोनाधाः । तानि छन्दांसि ॥ अथ द्रविणं वीर्य्यं
तच्छन्दः । तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्री ब्रह्मगायत्री ॥ ओजो वा इन्द्रियं वीर्य्यं त्रिष्टुप् ।
क्षत्रं त्रिष्टुप् । जागताः पशवः । इषमूर्जं रयिः पुष्टिर्जगती—इत्येवमादीनि द्रविणानि
छन्दांसि ॥ अथ रहो रुचिरभिलाषावश्यता स्वैराचारो निष्प्रतिबन्धः प्रतिपत्तिरित्ये-
तानि सप्तनिरुद्धछन्दांसि ॥ एषां सप्तविधानां छन्दोविशेषाणां चतुर्षु देवच्छन्दसेष्वे-
वान्तर्भावो द्रष्टव्यः ॥

परिमिता वर्णा वर्णछन्दः ॥ परिमिता मात्रा मात्राछन्दः ॥ परिमिता गणा
गणछन्दः ॥

वेदे वर्णछन्दांस्येव प्रायेणोपयुज्यन्ते ॥ १ ॥ चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री । तत-

श्चतुरंश्वृद्धिक्रमादुष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यो भवन्ति । ता आर्ष्यः ॥ २ ॥
 आर्षीविकाराच्छन्दसां सप्तकानि सप्तविधानि ॥ दैव्यासुरीप्राजापत्येत्यस्तास्तिष्ठो
 विधाः ॥ आर्ची साम्नी याजुषी ब्राह्मीत्येताश्चतस्रो विधाः ॥ तत्रार्ष्यः षोडशभिरक्षरै-
 र्हीनाश्चेत् प्राजापत्याः स्युः ॥ षोडशसु चैकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताक्षराः क्रमेण
 दैव्योऽवशिष्टाः क्रमेणासुर्यः । दैव्यासुरीप्राजापत्यानां समष्ट्या ता आर्ष्यः ॥
 आर्षीणामेकपादहानावाच्यो द्विपादहानौ साम्न्यस्त्रिपादहानौ याजुष्यः स्युः । आर्ची
 साम्नी याजुषी समष्ट्या तो ब्राह्म्यः ॥

| | दैवी | आसुरी | प्राजा- पत्या | आर्षी | आर्ची | साम्नी | याजुषी | ब्राह्मी | प्रमे- दाः |
|------------|------|-------|------------------|-------|-------|--------|--------|----------|---------------|
| गायत्री | १ | १५ | ८ | २४ | १८ | १२ | ६ | ३६ | ६ |
| उष्णिग् | २ | १४ | १२ | २८ | २१ | १४ | ७ | ४२ | ८ |
| अनुष्टुप् | ३ | १३ | १६ | ३२ | २४ | १६ | ८ | ४८ | ९ |
| बृहती | ४ | १२ | २० | ३६ | २७ | १८ | ९ | ५४ | १० |
| पङ्क्तिः | ५ | ११ | २४ | ४० | ३० | २० | १० | ६० | ११ |
| त्रिष्टुप् | ६ | १० | २८ | ४४ | ३३ | २२ | ११ | ६६ | १२ |
| जगती | ७ | ९ | ३२ | ४८ | ३६ | २४ | १२ | ७२ | १३ |

ये त्वेषां सप्तानां छन्दसां पादव्यवस्थाभेदात् प्रत्येकमनेकभेदा भवन्ति ते छन्दः—
 समीक्षायां द्रष्टव्याः ॥

देवपादाः

वायुरेकपात् । तस्याकाशः पादः ॥ १ ॥ चन्द्रमा द्विपात् । तस्य पूर्वपक्षापरपक्षौ
 पादौ ॥ २ ॥ आदित्यस्त्रिपात् । तस्येमे त्रयो लोकास्त्रयः पादाः ॥ ३ ॥ अग्निः षट्-
 पादः । तस्य पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौराप ओषधिवनस्पतयः—इमानि भूतानि पादाः
 ॥ गो० २ । १ ॥

मनोताः

वाग्, गौः, द्यौः—इत्येतास्तिष्ठः पूर्ववेदीयाज्यानां देवानां मनोताः । तत्र द्यौरित्यग्नि-
 र्वसवः ॥ अथ ज्योतिः । गौः । आयुः—इत्येतास्तिष्ठः उत्तरवेदीयाज्यानां देवानां
 मनोताः । अग्निः सर्वा मनोताः । अग्नौ मनोताः संगच्छन्ते ॥

आपः

अम्भः । मरीचिः । मरुः । श्रद्धा—इत्येताश्चतुर्विधा आपः ॥ तास्वदोऽम्भः परेण

(४६)

दिवं द्यौः प्रतिष्ठा ॥ सूर्य्यरश्मयोऽम्बुमया मरीचयः ॥ पृथ्वीरूपेण परिणता आपो
मरः । चन्द्ररश्मिमयाः सौम्या आपः श्रद्धाः ॥ मनसि ताः प्रत्यक्षं भाव्यन्ते ॥ १ ॥

दिव्या आन्तरिक्षाः पार्थिव्य इत्यापस्त्रेधा ॥ २ ॥

अथ राजसूयेऽभिषेचनीयाः संभरणीया आपः सप्तदशधा ॥—सारस्वत्यः ॥ १ ॥
प्राकुर्धः प्रत्यकुर्धश्चोर्मयः ॥ २ ॥ स्यन्दमानाः ॥ ३ ॥ प्रतीपस्यन्दिन्यः ॥ ४ ॥ अप-
यत्यः ॥ ५ ॥ नदीपतिः ॥ ६ ॥ निवेष्ट्याः ॥ ७ ॥ स्थावरो ह्रदः ॥ ८ ॥ आतपवर्ष्याः ॥ ९ ॥
वैशान्त्यः ॥ १० ॥ कूप्याः ॥ ११ ॥ प्रष्वाः ॥ १२ ॥ मधून्योषधिरसाः ॥ १३ ॥ गवो-
ल्भ्याः ॥ १४ ॥ पयांसि ॥ १५ ॥ धृतानि ॥ १६ ॥ मरीचयः ॥ १७ ॥ इति ॥

पशवः (८)

पुरुषः, अश्वः, गौः, अविः, अजः—इति पञ्च मेध्याः पशवः ॥ ते ग्राम्याः ॥
किं पुरुषः, गौरः, गवयः, उष्ट्रः, शरभः—इत्येते पञ्चामेध्याः पशवः । तेऽमी आरण्याः ॥
अन्येत्वाहुः—पुरुषः, अश्वः, गौः, अविः, अजः, रासभः, अश्वतरः—इति सप्त ग्राम्याः
पशवः ॥ गोमायुः, गोमृगः, गवयः, उष्ट्रः, शरभः, हस्ती, मर्कटः—इत्यारण्याः सप्तपशवः ॥

श्रोषधयः (९)

अग्नेर्वा एषा तनूर्यदोषधयः ॥ तै० ब्रा० ३ । २ । ५ ॥

इति सप्तमः पाठः ॥ ७ ॥

(१) त्रेताग्निविद्या

पृथिव्यग्निरभमादित्य इति चतुष्पाद् गार्हपत्याग्निः । योऽयमादित्ये पुरुषः ।
सोऽन्नं भूत्वा पृथिव्या भुक्तोऽग्निर्भवति । अग्नेः पुरीषं पृथिवी इति संचरक्रमः ।
प्रतिसंचरे पृथिव्या अग्निरन्नं भूत्वा तमादित्यमनुगतो भवति । सूर्य्य आद्यः पृथि-
व्यप्री । पृथिव्याद्या सूर्य्यस्तदत्तेत्यहरहर्यज्ञः प्रवर्त्तते ॥ १ ॥ एवमापो दिशो नक्ष-
त्राणि चन्द्रमा इति चतुष्पाच्छ्रपणीयाग्निः । य एष चन्द्रमसि पुरुषः सोऽस्य प्रभवः
स गतिः ॥ २ ॥ अथ प्राण आकाशो द्यौः विद्युदिति चतुष्पादाहवनीयाग्निः । य एष
विद्युति पुरुषः सोऽस्य प्रभवः स गतिः ॥ ३ ॥ सैषाग्निविद्या चात्मविद्या च ॥

(२) जीवात्मनि परमात्मसंस्त्रवः

१ अग्निर्मे वाचि श्रितो वाग् हृदये ॥ १ ॥

२ वायुर्मे प्राणे श्रितः, प्राणो हृदये ॥ २ ॥

३ सूर्यो मे चक्षुषि श्रितः, चक्षुर्हृदये ॥ ३ ॥

४ चन्द्रमा मे मनसि श्रितो, मनो हृदये ॥ ४ ॥

- ५ दिशो मे ओत्रे श्रिताः, ओत्रं हृदये ॥ ५ ॥
 ६ आपो मे रेतसि श्रिताः, रेतो हृदये ॥ ६ ॥
 ७ पृथिवी मे शरीरे श्रिताः, शरीरं हृदये ॥ ७ ॥
 ८ ओषधिवनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः, लोमानि हृदये ॥ ८ ॥
 ९ इन्द्रो मे बले श्रितः, बलं हृदये ॥ ९ ॥
 १० पर्जन्यो मे मूर्ध्नि श्रितः, मूर्धा हृदये ॥ १० ॥
 ११ ईशानो मे मन्यौ श्रितः, मन्युर्हृदये ॥ ११ ॥
 १२ आत्मा मेऽआत्मनि श्रितः, आत्मा हृदये ॥ १२ ॥
 + हृदयं मयि । अहममृते । अमृतं ब्रह्मणि ॥

(३) दशात्मबन्धवः

यज्ञः प्रजापतिः स आत्मा । तस्य प्रभवः—^१योनिः—^२प्रतिष्ठा—^३आशयः—^४गुहा—^५इति पञ्च पुरोबन्धवः । ^६पाप्मा—^७प्रजाः—^८पशवः—^९वोय्य—^{१०}द्रविणम्—इति पञ्चोत्तरबन्धवः । तेऽमी दशात्मबन्धवो भाव्याः ॥ यस्यात्मनोऽशानुपादाय किञ्चिदपूर्वं प्राणि जायते स रेतः सिक् प्रभवः । यत्र रेतः सिच्यते गर्भं आधीयते चितिश्रीयते यत्प्रवेशद्वारं यच्चाविर्भावद्वारं स योनिः ॥ यत्सत्त्वे तत्सत्त्वं यदभावे तदभावः । यस्मिन् प्रतिष्ठिते तत् प्रतिष्ठितं यस्मिन् बोत्क्रान्ते तदुत्क्रमते सा तस्य स्थितिहेतुः प्रतिष्ठा ॥ यत्र विभवति यत्र व्याप्रियते कर्माणि कुरुते स आशयः ॥ अथ पिण्डगर्भे क्वचिदात्मनः संस्थानाय योऽवकाशो भवति स आकाशो गुहा ॥ अणोरणीयान् महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायामित्याहुः ॥

तद्यथा—विज्ञानात्मा महानात्मा भूतात्मा इत्येवमात्मानस्त्रयोऽस्मिन् शरीरे विभवन्ति ॥ तेषां क्रमेण सूर्यश्चन्द्रः पृथ्वीति प्रभवाः ॥ एषामेव त्रयाणां रेतःसिचां ते ते रसाः शरीरे प्रविष्टाः हृद्ग्रन्थितः सूत्रात्मनाऽनुबद्धाः शरीराभिमानमागता अमी आत्मान उच्यन्ते ॥ तेषामत्र शरीरे क्रमेण ब्रह्मरन्ध्रमन्नं प्रपदं चेति योनयः प्रथमचिति भूमयो भवन्ति ॥ यत्र शीर्ष्णि केशान्तस्तद् ब्रह्मरन्ध्रम् । इयं सुषुम्णा यथा प्रविष्टः सर्वानाडीरभिव्याप्यायं हिरण्मयः सूर्यरसः शरीरी भवति । अथान्तं भुक्तं रसादिक्रमेण शुक्रं भूत्वा चान्द्रसं शरीरिणं कुरुते । पार्थिवश्च रसो हिरण्मयः प्रपदेन प्रपद्य क्रमादूर्क उदरमुरः शिरः पर्यन्तमभिक्रमते स भूतामा भवति ॥ अथैषां प्रज्ञात्मा शुक्रमन्नं चेति प्रतिष्ठाः । प्रज्ञानात्मना संपरिष्वक्तो ह्यविनाभतोऽयं विज्ञानात्मा भवति सह होतावस्मिन् शरीरे वसतः सहोत्तिष्ठतः । आदर्शो जलाशये

वा सूर्यप्रतिबिम्बवदस्मिन् प्रज्ञात्मन्येवायं चिदाभासो विज्ञानात्मा ॥ अथास्मिन् शुक्रेऽहरहश्चान्द्रं सहोऽनुवर्तते स महानात्मा शुक्रे प्रतिष्ठिते प्रवितिष्ठति तदुत्क्रमणे चोत्क्रमते । एवमन्नं भूतात्मनः प्रतिष्ठा । अन्नेन हि प्राणाः संभवन्त उच्छ्वास निश्वासौ जनयन्ति प्राणधारणं चेदमस्य जीवनं भवति ॥ अथ स्नायुनाड्यो भ्रूणादि-कुमयो रुधिरप्रवाहश्चैषामाशयाः स्युः । उदरगुहा उरोगुहो शिरोगुहो चेत्येतेषांगुहाः स्युः । अथवा सर्वा एवैताः अन्योन्यानुषक्तानां सर्वेषामेषामात्मनां प्रतिष्ठा अवधेयाः ॥ एषामेकस्याप्युत्सादे सर्वेषामेवात्मनामुत्क्रान्तिदर्शनात् ॥

अथोत्तरबन्धून् वक्ष्यामः । ग्रन्थिबन्धनहेतुरविद्या पाप्मा ॥ असङ्गेऽप्यात्मनि बुद्बुदवायूपरिजलावरणवदावरणभूतायामविद्यायां सर्वेऽप्येते प्रजापशुवोर्यवित्ता-न्यासज्जन्ते । अनिर्वचनीया हीयमविद्या तमोरूपा विद्यामयमात्मानं परितः स्वयमावृणुते । “अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्—” इति श्रुतेः ॥ ततः कामस्तपः भ्रमाः सृष्टिहेतवो जायन्ते तत एव च तस्मिन् प्रजाः पशवो वीर्याणि वित्तानि हृद्ग्रन्थिबद्धानि भवन्ति ॥

देवाः पितरो मनुष्याः पशवोऽसुरा इति पञ्चभूतानि प्रजाः । यज्ञतः प्रजायमाना आत्मनानुगृहीता इतरे यज्ञाः प्रजाः । पुरीषं करीषं चेति पशवः । लोहकिट्टवद् आत्मतः प्रजायमानमात्मना परित्यक्तमनात्मकं पुरीषम् । मलिनवस्त्रे मलवद् — अन्यात्मतः संगृहीतमनात्मकं शमलं करीषम् ॥ ब्रह्मक्षत्रं विड्बलमित्यन्तरङ्गाणि वीर्याणि । यानि तु बहिर्धा वीर्याणि शस्त्रं क्षेत्रं स्वापतेयमित्यादीनि तानि द्रवि-णानि ॥ द्रविणं वित्तम् ॥ यावन्नभ्यं यावद्वित्तं तावदयमेक आत्मा ॥

जीवात्मप्रभेदाः

आत्मा पञ्चविधः—अखण्डः परात्परः षोडशीपुरुषो यज्ञपुरुषो विराट्पुरुषश्च ॥ तत्र योऽयमंतर्बहिरप्रदेशो निष्कलो निरवद्यो निरञ्जनो निर्धर्यको रसमात्रः सोऽखण्डः ॥ अथ पञ्चाव्ययकलाः पञ्चाक्षरकलाः पञ्चक्षरकलाः प्रजापतिः सा षोडशी कलेत्येवं यः षोडशकलः स षोडशीपुरुषः ॥ अथैतस्य षोडशिनः पुरुषस्य त्रयो महिमान आत्मपोषा भवन्ति—प्रजा पशुर्वित्तमिति । एतैरात्मपोषैः संहितोऽयमात्मा यज्ञपुरुषः संपद्यते ॥ तस्यैतस्य यज्ञस्य नभ्यआत्मा प्रधिर्वित्तमिति रूपं भवति । ते चैते यज्ञा अनेकविधाः संभवन्ति । तेषां पञ्चदशानां विभिन्नरूपाणां यत्रैकस्मिन् षोडशिनिश्चंदनादुपसंग्रहणं स्यात् स विराट् पुरुषः । अन्नं वै विराट् । वैराजो वै पुरुषः—इति तित्तिरिश्रुतेः (तै० ब्रा० ३ । ६ । ८) ॥ स चेश्वरजीवभेदाद् द्विविधः । तत्रैतस्मिन् जीवपुरुषे ताने-तान् पञ्चदश यज्ञपुरुषानाख्यास्यामः ॥

आत्मानं द्विविधं-विद्यात् सखण्डाखण्डभेदतः ॥
 अखण्डात्मा निर्विशेषः सखण्डात्मा तु षोडशी ॥ १ ॥
 सन्ति पञ्चदशात्मानो भिन्नाः षोडशिनोऽन्विताः ॥
 यत्रैकत्र स जीवोऽयं विराडात्मा निगद्यते ॥ २ ॥
 अंतर्ध्यामी च सूत्रात्मा वेदात्मा चिन्मयोऽपि च ॥
 इति चत्वार आत्मानः स्वयंभुव इहातताः ॥ ३ ॥
 एक एव तु यज्ञात्मा परमेष्ठित आततः ॥
 विज्ञानात्मा च दैवात्मा द्वौ सूर्यादातताविह ॥ ४ ॥
 यज्ञातिशयजो नूत्नो दैव आत्मोपजायते ॥
 तेनाकृष्टः प्राज्ञ आत्मा स्वर्गं याति बलादिव ॥ ५ ॥
 त्रिणविकेतः स्वर्ग्याग्निः स्तोमे सप्तदशोः स्थितः ॥
 स एवाहवनीयोऽयं स्वर्गः संवत्सराभिधः ॥ ६ ॥
 दैवात्मा तस्य नोदेति यो न यज्ञेन वर्तते ॥
 यज्ञेन जन्यते दैव आत्मा कर्मात्मनि ध्रुवम् ॥ ७ ॥
 आकृतिः प्रकृतिश्चाहं कृतिरात्मा त्रिधा महान् ॥
 इहाततरचन्द्रमसः शरीरत्रययोनिभृत् ॥ ८ ॥
 बाह्यात्मा चान्तरात्मा च भूतात्मा द्विविधो भुवः ॥
 बाह्यात्मैष शरीरात्मा भूतभौतिकसंचयः ॥ ९ ॥
 अंतरात्मा द्विधा हंसः कर्मात्मा च स भूतभृत् ॥
 कर्मात्मा कर्मभोक्तात्मा स लोकानुपसर्पति ॥ १० ॥
 वैश्वानरस्तैजसात्मा प्रज्ञानात्मेति च त्रिधा ॥
 स कर्मात्मा कर्मभोक्ता सोऽग्निवाय्विन्द्रसंहिताः ॥ ११ ॥
 इत्थं पृथ्वीरसाः पृथ्व्या उत्थाय चितयोऽभवन् ॥
 भूतात्मानस्ततः पञ्चविधा इत्यात्मसंग्रहः ॥ १२ ॥

| स्वयंभूः ४ | परमेष्ठिः १ | सूर्यः २ | चन्द्रः ३ | पृथ्वी ५ |
|---|----------------|------------------------------|---|---|
| १ अंतर्ध्यामी २ सूत्रात्मा ३ वेदात्मा ४ चिदात्मा | १ यज्ञात्मा | १ विज्ञानात्मा २ दैवात्मा | १ आकृति महान् २ प्रकृति महान् ३ अहंकृति महान् | १ बाह्यात्मा=शरीरात्मा ० अंतरात्मा २ हंसात्मा ० कर्मात्मा ३ वैश्वानरः=अग्निः ४ तैजसः=वायुः ५ प्राज्ञः=इन्द्रः |

(५३)

(४) आत्ममर्त्यप्रजासृष्टिक्रमपर्वणि

आत्मा तमोऽमृतं ब्रह्म शुक्रं सत्त्वमिति क्रमात् ॥
आत्ममर्त्यप्रजासृष्टेः षट् पर्वणि भवन्ति हि ॥ १ ॥
क्षर आत्मैष रेतस्त्वं पाप्मना यात्यविद्यया ॥
कर्मभेदादिदं रेतश्चतुर्धा प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
अमृतं ब्रह्म शुक्रं च सत्त्वं चेति क्रमाद् भवेत् ॥
नातोऽन्यद् वर्तते किञ्चिद् यदिदं दृश्यते जगत् ॥ ३ ॥
अमृतं मौलिकं द्रव्यमेकद्रव्यमयौगिकम् ॥
अमृतान्येव संसृष्टिमुपेत्या यान्ति मर्त्यताम् ॥ ४ ॥
अमृतानां मिथो मूलग्रन्थितो ब्रह्म जायते ॥
ब्रह्मग्रन्थिवशाच्छुक्रं जायते ब्रह्मणां मिथः ॥ ५ ॥
शुक्राणां हृदयग्रन्थिवशात् सत्त्वं प्रजायते ॥
ग्रन्थिभिः संचरोऽथैषामुद्ग्रन्थिः प्रतिसंचरः ॥ ६ ॥
सत्त्वेषु शुक्रं, शुक्रेषु ब्रह्म, ब्रह्मसु चामृतम् ॥
सत्यमाख्यातमात्मत्वात् सत्यं सत्यस्य चामृतम् ॥ ७ ॥
सत्त्वं विराट्, शुक्रमन्नं, ब्रह्मासङ्गमथामृतम् ॥
दिग्देशाद्यनवच्छिन्नं, तदेकैकमनेकधा ॥ ८ ॥

(५) आत्मगतिविद्या

(१) योनिर्गतिः कर्मगतिर्द्वे गती नापरा गतिः ॥
यत्र कर्मगतिर्नास्ति तत्र योनिगतिः स्वतः ॥ १ ॥
सूर्यस्तदनुकूलास्तत्प्रतिकूलाः सहस्रशः ॥
लोका महिमभिस्तेषां प्रजायन्ते प्रजा भुवि ॥ २ ॥
आत्मा सूर्यरसः प्राज्ञस्तत्र लोकरसाश्रिताः ॥
विरुद्धा अविरुद्धा वा कर्मभिस्ता हि वासनाः ॥ ३ ॥
यज्ञोक्तवासना यत्र तारतम्येन विद्यते ॥
सा वासना तमात्मानं तं लोकं नयते बलात् ॥ ४ ॥
अन्याहितबलाकृष्टं लोष्टमूर्ध्वमधस्तिरः ॥
प्रयाति पारतन्त्र्येण प्राज्ञो लोकांस्तथैति तान् ॥ ५ ॥
क्रियाहितबलं कर्मवासना क्षीयते यदि ॥
भोगात्तदात्मा स प्रत्यावर्तते पृथिवी धृताः ॥ ६ ॥

- कामो हि वासनाहेतुर्निष्कामस्य न वासना ॥
 निर्लेपः सूर्यमभ्येति विद्ययोर्ध्वं प्रयात्यतः ॥ ७ ॥
- (२) आत्मभेदात् कर्मभेदात् पृथक्कर्मात्मनामितः ॥
 गतयः सांपरायिक्यः संपद्यन्ते विलक्षणाः ॥ १ ॥
 कैवल्ये मुक्तिरपरा स्वर्गो दैवतपैतृकौ ॥
 दुर्गत्यगतिपञ्चत्वान्यात्मनोऽष्टविधा गतिः ॥ २ ॥
 ये योनिभ्यो विभिन्नेभ्यः पृथिव्यामिह संचिताः ॥
 आत्मनस्ते ततो मुक्ताः क्रमन्ते स्वस्वयोनिषु ॥ ३ ॥
- (१)
 इहैव तस्य लीयन्ते प्राणाः कैवल्यमस्ति तत् ॥
 (१)
 निवृत्तकर्मा निष्कामकर्मा नोत्क्रमते क्वचित् ॥ ४ ॥
 अनुत्क्रान्तिरियं मुक्तिः क्षीणोदकाऽणिमानुगा ॥
 भूमोदका परा मुक्तिः सर्वमात्मैव तस्य हि ॥ ५ ॥
 यस्य हृद्ग्रन्थयः सर्वेऽप्युद्भिन्ना आत्मविद्यया ॥
 तस्य कर्माणि लुप्यन्ते सर्वमात्मैव सिध्यति ॥ ६ ॥
 “विद्यया तदारोहन्ति यत्र कामाः पराहताः ॥
 न तत्र दक्षिणा यन्ति नाविद्वांसस्तपस्विनः” ॥ ७ ॥
 कामप्रमपुनर्मरमशोकमहिमं च यत् ॥
 तदारोहति सालोक्यसामीप्यादिसमृद्धिभाक् ॥ ८ ॥
 यस्तु यज्ञतपोदानैर्विद्यासंस्कृतकर्मभिः ॥
 प्रयाति देवलोकान् स स्वर्गान् सप्ताधिरोहति ॥ ९ ॥
 इष्टापूर्तानुदत्तानि कर्माणि सुकृतानि यः ॥
 चरत्येष पितृस्वर्गांस्त्रिविधानधिरोहति ॥ १० ॥
 “उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ॥
 तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते” ॥ ११ ॥
 यस्तु दुष्कृतकर्मस्थो दुर्गतिं स हि गच्छति ॥
 सूर्यस्य प्रति दिग्भागे यमलोकान् स धावति ॥ १२ ॥
 असूर्या नाम ये लोका अन्धेन तमसा वृताः ॥
 तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ १३ ॥

(५५)

अनस्थिकास्तु ये जीवास्तेषामुत्क्रमणं न हि ॥
जायन्ते च म्रियन्ते च भूमावेवागतिर्हि सा ॥ १४ ॥
इत्थं कर्मात्मनामेता गतयः सप्तधोदिताः ॥
हंसात्मनोऽपि न गतिश्चन्द्रादवाक् स वर्तते ॥ १५ ॥
बाह्यात्मा तु शरीरात्मा पञ्चभूतानि कायजः ॥
स पञ्चत्वं गतः पञ्चभूतेष्वेषु विलीयते ॥ १६ ॥
इत्थं भूतात्मनामेता भवन्ति गतयोऽष्टधा ॥
पञ्च देवाश्च पञ्चत्वमायान्ति प्रकृतिं गताः ॥ १७ ॥
अथाकृतिमहान्तस्तु भूतानां मूर्तयः पृथक् ॥
चतुराशीतिलक्षणि योनयः कर्मबन्धनाः ॥ १८ ॥
मिथस्ताः परिवर्तन्ते योनयः कर्मबन्धनाः ॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः संसारगतिरस्ति सा ॥ १९ ॥
अहंकृतिर्महान्नित्यः स चन्द्रमनुधावति ॥
शरीरबन्धनान्मुक्तं चन्द्रेणैकी भवेन्मनः ॥ २० ॥
अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितम् ॥
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २१ ॥
दैव आत्मा कर्मजन्यो भोगक्षीणेन कर्मणा ॥
महैव रूपतः क्षीणः कर्पूर इव लुप्यते ॥ २२ ॥
प्रज्ञानात्मग्रन्थिमुक्तो विज्ञानात्मा क्षणादिव ॥
चानुषः पुरुषोऽसङ्गः सूर्येणैकीभवत्ययम् ॥ २३ ॥
यज्ञश्चिदात्मा वेदात्मा सूत्रात्मा सत्यमित्यपि ॥
सद्यः समवलीयन्ते नोत्क्रमन्ते पदान्तरम् ॥ २४ ॥

पन्थानः

(-१) देहत्यागानन्तरमात्मानां लोकान्तरसंचरणं गतिः । गतिहेतुर्नियतो देशः
पन्थाः ॥ पितृयाणो देवयानश्चेति द्वौ पन्थानौ । दक्षिणमार्गः । धूममार्गः ।
कुष्णमार्गः । पितृमार्ग इत्यभिन्नोऽर्थः । उत्तरमार्गः । अर्चिमार्गः । शुक्लमार्गः ।
देवमार्ग इत्यभिन्नोऽर्थः ॥ पितृयाणस्य द्वे शाखे—यमपथः, पितृपथश्चेति ।
देवयानस्य द्वे शाखे—देवपथो ब्रह्मपथश्चेति । तेनैते चत्वारः पन्थानः ॥
अत एवैता गतयोऽपि चतस्रो भवन्ति—परमागतिः । उत्तमागतिः । सद्ग-
तिर्दुर्गतिश्चेति ॥ ब्रह्मपथे संचारः परमागतिः । देवपथे गतिरुत्तमा ।
पितृपथे सद्गतिः । यमपथे दुर्गतिरिति भाव्यम् ॥

(२) तयोश्च पितृयानदेवयानयोः षड्रूपोपपादका भवन्ति कर्माणि । नाड्यः । आकाशः । छन्दांसि देवाः आतिवाहिकाश्चेति । तत्र कर्माण्येवैतयोः । प्रतिपत् ॥ तथा हि—विद्यानिरपेक्षकर्ममयः पितृयाणः । तत्राकर्म-
विकर्माणि यमपथः । सुकृतानि तु कर्माणीष्टापूर्तदत्तानि पितृपथः ॥

विद्याप्रधानो देवयानः । तत्र विद्यासमुच्चितानि प्रवृत्तिपद्ध्याणि सकाम-
कर्माणि यज्ञतपोदानानि देवपथः । एतान्येवाकामकृतानि निवृत्ति-
पद्ध्याणि विद्यामात्राणि ब्रह्मपथः ॥ विद्यया तदारोहन्ति यत्र कामाः परा-
हताः । न तत्र दक्षिणा यन्ति नाविद्वांसस्तपस्विनः ॥ परेत्वाहुः निष्काम-
कारिणां न प्राणा उत्क्रामन्ति इहैव समवलीयन्ते । नारोहन्ति न तेषाम-
पेक्ष्यते पन्थाः । येषां तु हृदयग्रन्थय उद्भिद्यन्ते तेषां कर्माणि क्षीयन्ते ।
तेनैषामुद्रिक्तविद्यानामेष ब्रह्मपथो द्रष्टव्यः । तदुक्तम्—यदा सर्वे प्रमु-
च्यन्ते कामा येऽस्य हृदिस्थिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवति अत्र ब्रह्म सम्-
श्नुते ॥ १ ॥ यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येहग्रन्थयः । अथ मर्त्योऽमृतो
भवति एतावदनुशासनम् ॥ इति ॥ ग्रन्थिः कर्मणां मर्त्यानामुत्पत्तौ
हेतुः । ग्रन्थिविमोके मर्त्यान्यमृतानि भवन्ति ॥ अतएवामृतमयेऽस्मि-
न्नपुनर्मारे कामप्रलोकेऽशोकमहिमलोके च गतानामात्मनां सर्वे कामाः
परागता भवन्ति—इति विद्यात् ॥

(३) अथ नाड्यः । शरीरस्य हृदयादधोगामिन्यो नाड्यः पितृयाणः । हृदया-
दूर्ध्वगामिन्यो देवयानः । मूलाधारगतानाडी यमपथः । अधस्ताद् विषू-
चीना नाड्यः पितृपथः । ऊर्ध्वास्तु विषूचीना नाड्यो देवपथः । मूर्धान-
मभिनिःसृता त्वेका नाडी ब्रह्मपथः । तत आदित्यं ततो विरजसं समेति ।
ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ॥ शतं चैका च हृदयस्य नाड्यास्तासां मूर्धानमभिनिः-
सृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ।
अणुः पन्था विततः पुराणो मां स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव तेन धीरा अपियन्ति
ब्रह्मविदः स्वर्गलोकमितऊर्ध्वं विमुक्ताः ॥ २ ॥ तस्मिन्नुक्तमुत नीलमाहुः
पिङ्गलं हरितं लोहितं च ॥ एष पन्था ब्रह्मणा हातु वितस्तेनैति ब्रह्मवित्

पुण्यकृत् तैजसश्च ॥ ३ ॥ इति वाजिश्रुतेः ॥ अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद् यः
स्थितो हृदि । सितासिताः कद्रुनीलाः कपिलामृदुलोहिताः ॥ १ ॥
ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्वा सूर्यमण्डलम् । ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन
याति परां गतिम् ॥ २ ॥ यदस्यान्यद् रश्मिशतमूर्ध्वमेव व्यवस्थितम् ॥ तेन
देवनिकायानां स्वधामानि प्रपद्यते ॥ ३ ॥ तेनैकरूपाश्चाधस्ताद् रश्मयोऽस्य-
मृदुप्रभाः । इह कर्मोपभोगाय तैः संसरति सोऽवशः ॥ ४ ॥ इति मैत्रिश्रुतेश्च ॥

(४) अथाकाशः । तत्रागस्त्यादुत्तरतोऽजवीध्याश्च दक्षिणतो द्वाचत्वारिंश-
दंशाः पितृपथः पितृयाणः । ततोऽधस्ताद्यमपथः । एवं सप्तर्षिभ्यो दक्षिणतो
नागवीध्यास्तूत्तरतो द्वाचत्वारिंशदंशा देवपथो देवयानः । तत ऊर्ध्वं
ब्रह्मपथो देवयानः । इत्थं कर्मविशेषाः । गात्रविशेषाः । व्योमविशेषाश्चेति
त्रय एवामी देवयानाः पन्थानः स्युः ॥ “त्रयो वै देवयानाः पन्थानः” —
इत्युत्तरगोपथश्रुतेः ॥ गो० उ० । १ । १ ॥

(५) अथ च्छन्दांसि । छन्दिताः प्राणाश्छन्दिता वाचश्च च्छन्दांसि । तत्र वाचः
पितृयाणः पन्थाः । प्राणास्तु देवयानः पन्थाः । यथाह तित्तिरिसंहिता-
याम् — “छन्दांसि वै देवयानः पन्थाः । गायत्री त्रिष्टुब् जगती । ज्योति-
र्वै गायत्री । गौस्त्रिष्टुप् । आयुर्जगती । यदेते स्तोमा भवन्ति देवयानेनैव
तत् पथा यन्ति” ॥ ७ । ५ । १ ॥

अथ देवाः । अग्निर्देवयानः सोमः पितृयाणः । “त्वं तन्तुरुत सेतुरग्रे त्वं पन्था
भवसि देवयानः । त्वयाग्ने पृष्ठं वयमारुहेम यत्र देवैः सधमादं मदेम” ॥ १ ॥ इति
मैत्रिश्रुतेः (२ । १३ । २२) ॥

(६) अथातिवाहिकाः । धूमो रात्रिः । कृष्णपक्षः । दक्षिणायनमासाः । सौम्य-
संवत्सराख्यः पितृलोकः । आकाशः । चन्द्रमाः । इति पितृयाणः ।
अर्चिः । अहः । शुक्लपक्षः उत्तरायणमासाः । सौरसंवत्सरो देवलोकः ।
इत्येतावानग्निलोकः । ततो वायुलोकः । ततः आदित्यलोकः । ततश्चन्द्रमाः
वैद्युतः । ब्रह्मलोकाः । इति देवयानः । बृ० आ० ६ । २ ॥ छां० ४ । १५ ॥
छां० ५ । १० ॥ चन्द्रमाः स्वर्गस्य द्वारम् । ततो याति यमपथं वा पितृपथं
वा । तत एव याति देवपथं वा ब्रह्मपथं वा । अथ क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं
विशन्ति क्षीणे पापे मर्त्यलोकं विशन्ति । तेषाममुत्र भुक्तभोगानां पितृ-
लोकाद्वा देवलोकाद्वाऽवरोहणे मनुष्यलोकप्राप्तौ द्वादशातिवाहिका भवन्ति ।

१ चन्द्रः । २ आकाशः । ३ वायुः । ४ धूमः । ५ अन्नम् । ६ मेघः । ७ वृष्टिः । ८ पृथिवी । ९ अन्नम् ।

१० ११ १२
 रेतः । पुरुषः । स्त्रीति । एतैरेवातिवाहिताः पञ्चम्यामाहुतौ खल्वापः पुरुष-
 वचसो भवन्तीति दिक् ॥ तथा च पितृयाणकर्म भातात्मा पितृयाण-
 नाडीभिरेवोत्क्रान्तः पितृयाणेनैवाकाशमार्गेण प्रस्थितः पितृयाणैरेवाति-
 वाहिकैरतिवाहितः क्रमेण स्वगन्तव्यं लोकमभ्येति । एवं देवयानकर्मपीति
 विद्यात् ॥

(७) दिवः श्येनयोऽपाद्याश्चानुवित्तयः

आशाकामो ब्रह्मयज्ञ आपोऽग्निर्बलिमांस्तु यः ॥

अनुवित्तिश्च सप्तैता द्वारः स्वर्लोकसंपदे ॥ १ ॥

दिवः श्येनय इत्युक्ता आयेता अनुवित्तयः ॥

एताभिरनुविन्दन्ति स्वर्गं सप्तभिरिष्टिभिः ॥ २ ॥ तै० ब्रा० ३।१२।२ ॥

तपः श्रद्धासत्यमनश्चरणानीति पञ्च वा ॥

द्वारः स्वर्गस्य लोकस्य अपाद्या अनुवित्तयः ॥ ३ ॥

(८) लोकविद्या

एको लोक आत्मा ॥ १ ॥ द्वौ लोकौ रोदसी ॥ २ ॥ त्रयो लोकास्त्रीणि भुवनानि
 पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः ॥ ३ ॥ चत्वारो लोकः—पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौराप इति । पञ्च
 लोकाः—पृथिव्यन्तरिक्षं दिगाप इति ॥ त्रयो लोकास्त्रीणि रजांसि भूर्भुवः स्वः ॥ ४ ॥ सप्त-
 लोकाः सप्तरजांसि भूः । भुवः । स्वः । महः । जनः । तपः । सत्यमिति ॥ ५ ॥ देवलोकः
 पितृलोको जीवलोकः—इत्येते त्रयो लोकाः ॥ इन्द्रो वै देवलोकः । यमः पितृलोकः ।
 मनुष्यलोको जीवलोकः । पुत्रेण मनुष्यलोकः कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोको
 जय्यः ॥ ६ ॥ अग्निलोको वायुलोको वरुणलोकः इन्द्रलोकः प्रजापतिलोको
 ब्रह्मलोकः—इत्येते देवयानलोकाः षट् कौषीतकीयानाम् ॥ अग्निलोकः । वायुलोकः ।
 आदित्यलोकः । चन्द्रलोकः । अशोकमहिमलोकः—इत्येते देवयानलोका वाजसने-
 यिनाम् ॥ अग्निः । वायुः । इन्द्रः । वरुणः । चन्द्रः । प्रजापतिः । ब्रह्म—इति सप्तैते
 देवयानलोका अन्येषाम् ॥ देवलोको देवस्वर्गलोकः स्वर्गलोक इति तुल्योऽर्थः सप्तैते
 देवलोका भवन्ति सप्तस्वर्गाः—

अग्नेरपोदको वायोऽर्तधामाऽपराजितः ॥

इन्द्रस्याऽयैकविंशोऽन्तर्नाको ब्रह्मस्य विष्टपम् ॥ १ ॥

(५६)

सूर्यगर्भोऽत्र च स्कम्भो नाकस्तस्य शिरोऽपरः ॥

अधिद्यौर्वारुणः प्रद्यौर्मृत्योर्ब्राह्मस्तु रोचनः ॥ २ ॥

प्रजापतेर्विभान्नाम लोक इत्याह तित्तिरिः ॥

प्रथमे संहिताकाण्डे सप्तमस्य च पञ्चमे ॥ ३ ॥ १।७।५ ॥

स स्वर्गमेव तल्लोकं रूढ्वा ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥

अभ्यतिक्रामतीत्युक्तं ताण्ड्यस्य जयसप्तमे ॥ (१८।७) ॥

सन्धीयेते यत्र चैतौ त्रयस्त्रिंशौ तु मध्यतः ॥

ताण्ड्ये धूपे नये प्रोक्तमेष ब्रध्नस्य विष्टपः । ता० १६।१० ।

त्रिणाचिकेतः स्वर्ग्याग्निरादौ सप्तदशः स्तुतः ॥

कामप्रो वैद्युतः पञ्चविंश ऐन्द्रोऽस्ति सोऽन्ततः ॥ ४ ॥

अग्नेरूर्ध्वमधस्तिवन्द्रादैन्द्राग्नोऽग्निस्त्रिवृत् कृतः ॥

स यज्ञस्तद्रता देवलोकाः स्वर्गास्तु सप्त ते ॥ ५ ॥ (ता० १८।२।)

आद्यः स्वर्गः सप्तदशो द्वितीयस्त्वेकविंशकः ॥

तृतीयः पञ्चविंशोऽयं त्रयः स्वर्गा विशेषतः ॥ ६ ॥

ब्रह्मविष्टपमेष्वद्यं मध्यमं विष्णुविष्टपम् ॥

वैद्युतं विष्टपं त्वैन्द्रं स्वर्गमाहुस्त्रिविष्टपम् ॥ ७ ॥

स्वर्गः संवत्सरो यस्तन्मध्य आहवनीयकः ॥

श्रूयते तं विजानीयादाद्यं सप्तदशं स्तुतम् ॥ ८ ॥

हिरण्यमयं यत्परं भास्तपत्येष प्रजापतिः ॥

स स्वर्ग इति यं प्राहुस्तं विद्यादेकविंशकम् ॥ ९ ॥

एतदूर्ध्वं समारोहन् देवाश्चित्वा विराट् चितम् ॥

स्वर्गं लोकं नाकमेते पश्यन्तस्तमुपादधुः ॥ १० ॥

स्वर्गो लोकः स नाकोऽयं स्तोमभागाहि याः स्तुताः ॥

तिस्रस्तिस्रस्रयो लोका दिशश्चेत्येकविंशतिः ॥ ११ ॥

एकविंश्यां प्रतिष्ठायां स्तोमभागाष्टकं परम् ॥

प्रतिष्ठितं ब्रह्म विराट् स नाक इति भाव्यताम् ॥ १२ ॥

ऊनत्रिंशत् स्तोमभागाश्छन्दस्यान्नस्य ते रसाः ॥

त इन्द्रलोकास्तैरिन्द्रं प्रपन्नोऽसौ प्रजापतिः ॥ १३ ॥

सर्वे देवास्त्र्यस्त्रिंशदहानि विभवन्त्यमी ॥

प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशोऽतिशेते नाक एव सः ॥ १४ ॥

न हि प्रजापतिः कस्मैचिदकं नाक एव सः ॥

इत्याह ताण्ड्यदशम—प्रथम—द्वादशीश्रुतिः । (१० । १ । १२) ॥ १५ ॥

॥ इति देवलोकाः ॥ १ ॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ॥

तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ १० ॥ अ० सं० १८ । २ । ४८ ॥

उदन्वती जलप्राया पीलुमत्यटवीमयी ॥

प्रद्यौर्ज्योतिष्मती भूमिः सौम्याः स्वर्गा इमे त्रिधा ॥

सप्त याम्या लोकाः । तेषामेकैकस्य चत्वारश्चत्वारो भेदा इत्यष्टाविंशतिर्यमलोकाः
तेषामप्येकैकस्य यस्त्रयोऽवान्तरभेदा इति चतुरशीतिर्यमलोकाः पौराणिकैरादिश्यन्ते ॥
एषां नामानि पुराणतोऽवसेयानि ॥

॥ इति पितृलोकाः ॥ २ ॥

अष्टौ सत्वविशालास्तमो विशालास्तु पञ्चाधः ॥

मध्ये रजोविशालो मानुष एकः प्रवर्तते सर्गः ॥ १ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता याश्चतुर्दशयोनयः ॥

ते चतुर्दशलोकास्तानन्वात्मा विचरत्ययम् ॥ २ ॥

ते जीवलोकाः संसारलोकाः कर्मनिबन्धनाः ॥

उच्चावचाः सुखं दुःखं तेषु चात्मा भुनक्ति हि ॥ ३ ॥

॥ इति जीवलोकाः ॥ ३ ॥

तिस्रो दिवस्तिस्त्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ॥

त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वारक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्धिः ॥ अथ० १६ । ४ । ३ ॥

त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्ट्रपान् ।

त्रीन्मातरिश्वनस्त्रीन् सूर्यान् गोप्तृन् कल्पयामि ते ॥ ४ ॥

(६) दिक्प्रपत्तिः

षड् दिशो भवन्ति—प्राची देवानाम् । दक्षिणा पितॄणाम् । प्रतीची असुराणाम्
उदीची मनुष्याणाम् । ऊर्ध्वा ब्रह्मणः । अधरा विष्णोरनन्तस्येति ॥ १ ॥ प्राची
दिग्गनिर्देवता । दक्षिणादिग्निन्द्रो देवता । प्रतीची दिक् सोमो देवता । उदीची दिग्
मित्रावरुणौ देवता । ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिर्देवता । इयं दिग्दितिर्देवता । पुरुषो दिक् ॥
तै० ब्रा० ३ । ११ । ५ ॥

अपि वा दश दिशो भवन्ति । पूर्वा तावदिन्द्रस्य, पूर्वदक्षिणा त्वग्नेः । दक्षिणा यमस्य
दक्षिणपश्चिमा निष्कृतेः । पश्चिमा वरुणस्य । पश्चिमोत्तरा वायोः । उत्तरा सोमस्य ।

उत्तर पूर्वा—ईशानस्य । ऊर्ध्वा ब्रह्मणः । अधरा अनन्तस्येति ॥ २ ॥ अथ पञ्चास्थान-
दिशः प्राहुः समित् । उग्रा । विराट् । उदीची । ऊर्ध्वा चेति ॥ ३ ॥

प्राची दिक् प्राची । सेयमूर्क् । सासौ द्यौः ॥ दक्षिणा दिग् दक्षिण्यं स लोक-
स्तदन्तरिक्षम् । प्रतीची दिगाशा । सेयं श्रीः । सेयं पृथिवी । उदीची दिगापः । सोऽयं
धर्मः सा दिक् ॥ इति श्रूयते । अयं भावः प्राची संमुखता सापेक्षता तत ऊर्गं बलं
प्रवर्तते । शरीरे प्राणे मनसि च बलाधानमूर्गं भावः ॥ एवम्—दक्षिण्यमुदारभावः ।
ततोऽयं पुरुषो लोको भवति । शरण्य आश्रणीयः प्रतिष्ठालोकः । एवम्—आशा आशं-
सनम् निश्चितस्य लाभस्य प्रतीक्षणमाशा । अनिश्चितस्यापेक्षाकामः इति सायणः ॥ तै०
ब्रा० ३ । १२ । २ ॥ अपि वा अनेन कर्मणाऽमुष्माद्वा पुरुषान्मम कामः सेत्स्यतीति
धारणैवाशा ॥ ततः श्रियं विन्दते उन्नतिं लभते । अथ आप एव प्रत्यर्थमन्तर्गता धर्म्मा
भवन्ति । यदेमं लोकमाप आगच्छन्ति सर्वमेवेदं यथाधर्मं भवतीति । आप एवैते
वस्तु धर्म्मा भवन्ति । इति विद्यात् ॥

इत्यष्टमः पाठः ॥ ८ ॥

(१) यज्ञप्रतिपत्तिः

प्रजापतेर्विस्रंसमानस्य—अन्नाधानद्वारा भैषज्यादविस्रंसनं यज्ञः । एको यज्ञः
संवत्सराग्नेर्वा वैश्वानराग्नेर्वा संस्कारः ॥ १ ॥ द्वौ यज्ञौ—स्वयंभूयज्ञः कृत्रिमयज्ञश्च ।
देवैर्भाव्यमानाः परमे व्योम्नि संपद्यमानाः पृथ्वीचन्द्रसूर्यादयो यज्ञाः स्वयंभुवो
दृश्यन्ते । ये तु मनुष्यैः पारत्रिकानैहिकान् वा कामानुद्दिश्य क्रियन्ते ते कृत्रिमाः
स्युः ॥ २ ॥ अपि वा यज्ञस्त्रेधा—इष्टयः पशवः सोमाश्चेति । पशुविकलायामाज्याहुता-
विष्टिशब्दः ॥ वपामांसप्रदाने पशुशब्दः । ग्रहयागे सोमशब्दः ॥ ३ ॥ अपि वा

यज्ञः पञ्चधा—^१हवनं ^२निर्वपणं ^३सवनं ^४सादनं ^५चयनं चेति । अग्नावाज्योपधानं हवनम् ।
अग्नौ वपामांसोपधानं निर्वपणम् ॥ अग्नौ ग्रहसुत्या सवनम् । दुर्बलात्मनः
प्रबलात्मनानुबन्धनं तदायत्तीकरणं संसादनम् । अग्नावग्निचित्या चयनमिति
विद्यात् ॥ ४ ॥

अन्नं सत्त्रं चितिश्चेति यज्ञस्त्रेधा । इष्टयः पशवः सोमा इति त्रयोऽन्नयज्ञाः । बलवत्य-

बलाधानं सत्त्रम् । समबलयोः संसृष्टिशचितिः ॥ अपि वा यज्ञः पञ्चधा—^१पाकयज्ञः

^२हविर्यज्ञः ^३महायज्ञः ^४अतियज्ञः ^५शिरोयज्ञश्चेति ॥

पाकयज्ञः

यावानेकाग्नौ यज्ञो यावान् वाऽनग्नौ यज्ञः स पाकयज्ञः । स हि चरुपाकत्वात् पाकः । स्वल्पकायत्वाद्वा पाकः । हिंसादिदोषराहित्याच्च पाकः । सोऽयमेकाज्यः स एकवर्हिः स एकस्विष्टकृदिति कृत्वैकविधः पाकयज्ञः ॥ १ ॥ स्थालीपाकः पाशुपाकश्चेति द्विविधः पाकयज्ञो लाज्यायनादीनाम् ॥ २ ॥ व्रतचर्याः शान्तिकर्मणीति द्विविधः पाकयज्ञो मानवादीनाम् ॥ ३ ॥ इष्टमापूतं दत्तं चेति त्रिविधः पाकयज्ञ एकेषाम् ॥ हुतः प्रहुतो ब्रह्मणि हुत इति त्रिविधः पाकयज्ञ आश्वलायनादीनाम् ॥ हुता अग्नौ हूयमानाः, अनग्नौ प्रहुताः, ब्राह्मणभोजनं ब्रह्मणि हुताः ॥ ४ ॥ हुतः अहुतः प्रहुतः प्राशित इति चतुर्विधः पाकयज्ञः पारस्करादीनाम् । यत्र होममात्रं स हुतः । होमो बलिहरणं चेति प्रहुतः । यत्र भोजनं स प्राशितः । अन्यदेभ्यश्चेत् सोऽहुतः ॥ ५ ॥ व्रतं वृद्धिः पित्र्यं पशुः स्थालीपाकः—इति पञ्चविधः पाकयज्ञः ॥ ६ ॥ सायं प्रातर्नित्यहोमौ स्थालीपाको नवश्च यः ॥ बलिश्च पितृयज्ञश्च अष्टकाः सप्तमः पशुः । इत्येते पाकयज्ञाः स्युरिति गोपथश्रुतिः ॥ ७ ॥ अष्टकान्वष्टकाः पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी चैत्र्याश्वयुजीति सप्तपाकयज्ञसंस्था सुमन्तुगौतमादीनाम् ॥ ८ ॥ हुतः प्रहुतः श्रूलगवः बलिहरणं प्रत्यवरोहणमष्टका होम इति सप्त पाकयज्ञसंस्था बौधायनादीनाम् ॥ ९ ॥ औपासनहोमो वैश्वदेवं पार्वणमष्टका, मासिकश्राद्धं सर्प-बलिरीशानबलिरिति सप्तपाकयज्ञसंस्था आपस्तम्बानुयायिनाम् ॥ १० ॥ व्रतपाकाः वृद्धिपाकाः, पित्र्यपाकाः, पशुपाकाः स्थालीपाकाः, उपयाचिकाः, काम्यपाकाः, पूतं दत्तं चेति नवधा पाकयज्ञा अन्येषाम् ॥ ११ ॥ प्रतिपत्तिभेदमात्रं न वस्तुभेदः ॥ अपि चाहुः । हुतं प्रहुतं ब्रह्मणि हुतमित्युक्तम् । तत्र हुतपाकयज्ञस्त्रेधा स्थालीपाकः पशुः श्राद्धं च । स्थालीपाकः सप्तधा—आवसथ्याधानम् । औपासनम् । पार्वणस्थालीपाकः । नभ्यकर्मणि आग्रयणम् । गृह्यस्थालीपाकाः । काम्यपाकाश्चेति । एषामप्युत्तरे भेदा यज्ञमधुसूदने व्याख्याता द्रष्टव्याः ॥

हविर्यज्ञः

हविर्यज्ञस्त्रिविधः—इष्टिः पशुः पित्र्यं च । तत्रेष्टिः सप्तधा—अग्न्याधेयम् । अग्निहोत्रम् । दर्शपूर्णमासम् । चातुर्मास्यम् । आग्रयणम् । इष्टययानि । काम्येष्टयश्चेति । अपूर्वाधानम् । अन्वाधानम् । पुराधानम् । तृतीयाधानम् । विच्छिन्नाग्न्याधानं चेति पञ्चविधान्यग्न्याधेयानि ॥ अहोरात्रपर्वद्वययागोऽग्निहोत्रम् । मासपर्वद्वययागो याविहोत्रम् । ऋतुमुखपर्वत्रययागश्चातुर्मास्यम् । नवसत्येष्टिराग्रयणम् तत्र श्यामाकाग्रयणकालो वर्षाः । ग्रीष्माग्रयणकालः शरत् । अथ यवाग्रयणकालो वसन्त

इति तत् त्रेधा ॥ इष्टिविकृतिरूपा अयनयागा इष्टयनानि । अनुनिर्वाण्याः अदी-
क्षितायनानि प्रायश्चित्तोयाः क्रत्वर्थाया इति चतुर्विधानीष्टयनानि । अष्टापञ्चाशद्वा
ततोऽप्यधिका वा काम्येष्टयः ॥

पशुरिति पशुबन्धो नाम । स चतुर्धा—निरूढपशुबन्धः । अग्नीषोमीय पशुबन्धः ।
सौत्रामणी पशुबन्धः । चयनीयपशुबन्धश्चेति । अपि वा द्विविधः पशुबन्धः—हविर्य-
ज्ञविधोन्यः । सवयज्ञविधोऽन्यः ॥

अथ पित्र्यं पिण्डपितृयज्ञाख्यं पितृकर्मद्विविधम् । पुरुषार्थं क्रत्वर्थं च ॥ चातुर्मा-
स्यादियज्ञान्तराङ्गभूतं क्रत्वर्थम् । एतच्च पित्र्येष्टिः पितृयज्ञो महापितृयज्ञ इत्यप्युच्यते ॥
इत्युक्तो हविर्यज्ञः ॥

महायज्ञः

अथ महायज्ञो द्वेधा—सोमः सुरा च । सोमः पञ्चधा—एकाहः, अहीनः, रात्रिसत्त्रम्,
अयनसत्त्रम्, महासत्त्रं चेति । एकेनाह्वा साध्यः एकाहः । द्विरात्रादयो दशरात्रान्ता
अनेकाहसाध्या अहीनाः । छन्दोमदशाहश्चिकुब्दशाहश्चेति दशाहो द्विविधः । एकादश-
रात्रमारभ्य शतरात्रान्तानि बहुरात्रसाध्यानि रात्रसत्त्राणि शतरात्रादूर्ध्वं सहस्र-
रात्रिपर्यन्तमयनसत्त्राणि । तदित्यमेकदशशतसहस्रभेदाच्चतुर्धा सोमा इत्येकं
मतम् ॥

द्विरात्रमारभ्य द्वादशरात्रपर्यन्तमहीनाः । एकादशरात्रमारभ्य संवत्सरादर्वाङ्
रात्रिसत्त्राणि । एकसंवत्सरसाध्यमारभ्य सहस्रसंवत्सरपर्यन्तमयनसत्त्राणि तथा
चैकादशाहो द्वादशाहश्च द्वेधा भवतः । अहीनभूतः सत्त्रभूतश्च । तत्रापि द्वादशाहो
द्विविधः—व्यूढद्वादशाहो भरतद्वादशाहश्च । तदित्यमेकाहद्वादशाहैकसंवत्सर-
सहस्रसंवत्सरभेदाच्चतुर्धा सोमा इत्यपरं मतम् ॥ सहस्रसंवत्सरस्त्वयं यज्ञः प्रतिनिधिभिः
पञ्चभिरङ्गः सवैरुपपादनीयः । तापश्चितः संवत्सरो द्वादशाहः पृष्ठ्यषडहो विश्वजि-
ज्ञेति पञ्चाङ्गः सवा यज्ञाः । सहस्रसंवत्सरस्थाने तापश्चितं नाम त्रैसांवत्सरं सत्त्रं
कुर्यात् । तत्स्थाने वा संवत्सरसत्त्रं तत्स्थाने वा द्वादशाहं तत्स्थाने वा पृष्ठ्यं
षडहं, तत्स्थाने वा सर्वपृष्ठमेकाहं विश्वजितमेव कुर्यादित्यनुकल्पाः स्युः ॥

अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी अतिरात्रो वाजपेय आप्तोर्याम इति सप्त
संस्थो ज्योतिष्टोम एकाहः ॥ १ ॥ गोष्टोमायुष्टोमौ । सौमिकचातुर्मास्यानि गर्गत्रिरात्रं
वैदित्रिरात्रम् । अश्वमेध इत्यादयोऽहीनाः ॥

सप्तसंस्थो ज्योतिष्टोमः, वैकारिकास्त्वष्टापञ्चाशत् । इत्थमेकाहाः पञ्चषष्टिः ॥
द्वयज्ञः पञ्च । ज्यहः पञ्चदशः । पञ्चाहश्चत्वारः । चतुरहषडहदशाहद्वादशाहानां

द्वौ द्वौ । सप्ताष्टाह्नवाहैकादशाहा एकैका इत्थमहीना षट्त्रिंशत् ॥ रात्रि-
सत्त्राणि द्वात्रिंशत् ॥ ॥ ख्यानि ज्योतिषामयनानि दश ॥ गौणानि चत्वारि वैकारि-
काणि गवामयनानि त्रीणि वैशेषिकाणि त्रीणि तापश्चितानि त्रीणि, बहुसांवत्सरि-
काण्यष्टौ । सारस्वतानि त्रीणि । दार्षद्वतं चैकम् । इत्थमयनसत्त्राणि पञ्चत्रिंशत् ।
तत्र गवामयनम् । आदित्यानामयनम् । अङ्गिरसामयनम्—इति त्रीणि प्रधानानि ॥
अथ भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञो देवयज्ञः पितृयज्ञो ब्रह्मयज्ञः इति पञ्चमहायज्ञा महा-
सत्त्राणि ॥ ५ ॥ अथ कौकिली चरका चेति द्विविधा सौत्रामणी । तत्र सुराप्रचारः ॥
तदित्थं पञ्चसप्ततं शतं महायज्ञा आख्याताः ॥ १७ ॥

(२) अतियज्ञ—शिरोयज्ञौ

अश्वमेधः । राजसूयः । वाजपेयः । अग्निचित्या—इति चत्वारोऽतियज्ञाः । अथ
शिरोयज्ञो धर्मयागः प्रवर्गयागः । सम्राड्यागः । महावीरोपासना चेत्येकोऽर्थः ॥

यज्ञपरिशेषः

परे त्वाहुः औपासनहोमादयो नित्यहोमस्थालीपाकादयो वा सप्तपाकयज्ञसंस्थाः ॥

^१ अग्निहोत्रं ^२ दर्शपूर्णमासम् ^३ आग्रयणं ^४ चातुर्मास्यानि ^५ निरूढपशुबन्धः सौत्रामणी पिण्ड-
पितृयज्ञचतुर्होमहोमादयो हविर्होमा इति सप्तहविर्यज्ञसंस्थाः । अग्निष्टोमादयः सप्त-
सोमसंस्थाः । इत्येवमेकविंशतिसंस्थः सर्वो यज्ञः । “सप्तसुत्याः सप्त च पाकयज्ञा
हविर्यज्ञाः सप्त तथैकविंशतिः । सर्व ते यज्ञा अङ्गिरसोऽपि यन्ति नूतना यानृषयः
सृजन्ति ये च सृष्टाः पुराणैः “इति गोपथश्रुतेः । इत्थमेतावानेव सर्वो यज्ञः प्रति-
पत्तव्यः ॥ ० ॥

(१) यज्ञक्रमाः

अग्न्याधेयम् । पूर्णाहुतिः । अग्निहोत्रम् । दर्शपूर्णमासौ आग्रयणम् । चातुर्मा-
स्यानि । पशुबन्धः । अग्निष्टोमः । राजसूयः । वाजपेयः । अश्वमेधः । पुरुषमेधः ।
सर्वमेधः । दक्षिणावन्तः । अदक्षिणाः । सहस्रदक्षिणः । ते वा एते यज्ञक्रमाः ॥
॥ गो० पू० ५ ॥

(२) संवत्सराहर्विभागाः

संवत्सरस्य वै दशाहानि । दशाक्षरा विराट् । वैराजो यज्ञः ॥ १ ॥ नवाहानि । नव
वै प्राणाः । प्राणैर्यज्ञस्तायते ॥ २ ॥ अष्टाहानि । अष्टाक्षरा गायत्री । गायत्रो

यज्ञः ॥ ३ ॥ सप्ताहानि । सप्तछन्दांसि । छन्दोभिर्यज्ञस्तायते ॥ ४ ॥ षडहानि । षड्
वा ऋतवः ॥ ५ ॥ पञ्चाहानि । पञ्चपदा पंक्तिः । पाङ्क्तो यज्ञः ॥ ६ ॥ चत्वार्यहानि ।
चत्वारो वै वेदाः । वेदैर्यज्ञस्तायते ॥ ७ ॥ त्रीण्यहानि । त्रिषवणो वै यज्ञः । सवतै-
र्यज्ञस्तायते ॥ ८ ॥ द्वे अहनी द्विपाद्वै पुरुषः । द्विप्रतिष्ठः पुरुषः । पुरुषो वै
यज्ञः ॥ ९ ॥ एकमहः । अहरहरित्येकमेव सर्वं संवत्सरं पश्यामः ॥ तां० ४ । २४ ॥

(३) सहस्रसंवत्सरप्रतिमाः

सहस्रसंवत्सरो यज्ञो दीक्षोपसत् सुत्याभिस्त्रिसहस्रसंवत्सरो भवति ॥ १ ॥ तदनु-
कल्पः सांवत्सरस्तापश्चितस्त्रैवार्षिको भवति ॥ २ ॥ तदनुकल्पश्चातुर्मासिकस्तापश्चितो
वार्षिको भवति ॥ ३ ॥ तदनुकल्पो द्वादशाहः षट्त्रिंशताहोभिः संपद्यते ॥ ४ ॥ तदनु-
कल्पः पृष्ठथः षडहोऽष्टादशभिः ॥ ५ ॥ तदनुकल्पो विश्वजिदेकाहस्त्रिभिरहोभिः । ता
एताः सहस्रसंवत्सरप्रतिमा उपज्ञायन्ते ॥ गो० ५ । १० ॥

इति नवमः पाठः ॥ ६ ॥

यज्ञोपपत्तिः

उक्तम्—अर्कः—अशितिः—इत्येतत् त्रितयमन्योन्यानुषक्तं यज्ञोपपत्तिः ॥ तत्रेद-
मुक्तमन्यायतनं कुण्डवत् । तत्रायमर्कः समिद्धोऽग्निः । तत्राहितिराहुतिरेवाशितिः ॥
तद्यथा—परमः प्रजापतिर्यज्ञपुरुषः । सोऽव्ययः सोऽक्षरः स क्षरः । तत्रायं क्षरपुरुषो
महानुक्तः । सर्वे प्राणा देवा अर्कः । सर्वाणि भूतान्यन्नमशितिः । इत्यधिदैवतम् ।
अथाध्यात्मम् । अयमहं पुरुष एवोक्तमयमेव महान् प्रजापतिः । अध्यात्मं प्राणोऽ-
र्कः । पृथ्वीजलतेजोवायवाकाशा बलज्ञाने चेति सप्तविधमन्नमशितिः ॥ अपि चान्तर्यज्ञे
तानि त्रीणि क्रमेण विद्यात् । तद्यथा—

| | | |
|-------------|---------|--------|
| पृथिवी | अग्निः | अन्नम् |
| अन्तरिक्षम् | वायुः | अन्नम् |
| द्यौः | आदित्यः | अन्नम् |
| मुखम् | वाक् | अन्नम् |
| नासिके | प्राणः | अन्नम् |
| ललाटम् | चक्षुः | अन्नम् |

तानीमानि पृथिव्यादीन्याद्यानि च भवन्त्यत्रीणि च । यद्व किञ्चेयं प्रेत्ये—तदसौ
सर्वमस्ति । यदु किञ्चातः प्रैति तदियं सर्वमस्ति ॥ (ऐ० आ० १ । १ । ० ।) ॥

(१) यज्ञयोनयः

दशाहोता, चतुर्होता, पञ्चहोता, षडहोता, सप्तहोता—इति पञ्चैते चतुर्होतारो
यज्ञयोनयः ॥

अग्निहोत्रं दशहोता । दर्शपूर्णमासौ चतुर्होता । चातुर्मास्यानि पञ्चहोता । पशुबन्धः षड्होता । सौम्योऽध्वरः सप्तहोता ॥ इत्येतानि वै चतुर्होतृणां निदानानि ॥ तै० ब्रा० २ । २ ॥

प्रजापतिर्दशहोता । सोमश्चतुर्होता । अग्निः पञ्चहोता । धाता षड्होता । अर्य्य-
मास इन्द्रो वा सप्तहोता । इत्येते वै देवाः क्रमेण चतुर्होतृणां गृहपतयः । एत एव वै
देवाश्चतुर्होतृणां होतारः ॥ (तै० ब्रा० ।)

वाचस्पतिर्होता दशहोतृणाम् । पृथिवी होता चतुर्होतृणाम् । अग्निर्होता पञ्चहोतृ-
णाम् । वाग्धोता षड्होतृणाम् । महाहविर्होता सप्तहोतृणाम् । इति चाहुः ॥ तदित्य-
मेषां चतुर्होतृणां बन्धुक्लृप्तिमायतनं प्रतिष्ठां चारुण्यौपवेशिर्विदांचकार ॥ (तै०
ब्रा० ३ । १२ । ५ ॥)

(२) ऋत्विजः

अग्निहोत्रस्यैक ऋत्विक् । दर्शपूर्णमासयोश्चत्वारः । चातुर्मास्यानां पञ्चर्त्विजः ।
पशुबन्धस्य षट् । सप्तहोत्राः—सौम्यस्याध्वरस्य ॥ १ ॥ ऋत्विजो द्विविधाः—देवा
मनुष्याश्च । तत्र—अग्निर्होता । वायुरध्वर्युः । आदित्य उद्गाता । चन्द्रमा ब्रह्मा—
इत्येते सूर्य्ययज्ञसम्बन्धिनश्चत्वारो देवा ऋत्विजः । तत्प्रतिकृत्या क्लृप्ता दक्षिणा-
क्रीतास्तथा चत्वारो मनुष्या ऋत्विजः ॥ हौत्रविद्धोता । ऋग्वेदविद्धोता । अग्निर्होता ।
पृथिवी ऋचामायतनम् । अग्निर्देवता गायत्री छन्दः । भूरिति शुक्रम् ॥ १ ॥ आध्व-
र्य्यवविदध्वर्युः । यजुर्वेदविदध्वर्युः । वायुरध्वर्युः । अन्तरिक्षं यजुषामायतनम् ।
वायुर्देवता । त्रैष्टुभं छन्दः । भुव इति शुक्रम् ॥ २ ॥ औद्गात्रविदुद्गाता । सामवेद-
विदुद्गाता । आदित्य उद्गाता । द्यौः साम्नामायतनम् । आदित्यो देवता । जागतं छन्दः
स्वरिति शुक्रम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मत्वविद् ब्रह्मा ॥ अथर्वाङ्गिरोविद् ब्रह्मा । चन्द्रमा ब्रह्मा ॥ आपोभृग्वङ्गिरसा-
मायतनम् । चन्द्रमा देवता । वैद्युतश्च देवता । उष्णिक्काकुभे छन्दसी । ओम्—
इत्यथर्वणां शुक्रम् । जनदित्यङ्गिरसाम् ॥ ४ ॥ एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म । यद् भृग्व-
ङ्गिरसः । येङ्गिरसो येङ्गिरसः स रसः । येऽथर्वाणो येऽथर्वाणस्तद् भेषजम् ॥ यद् भेषजं
तदमृतं यदमृतं तद्ब्रह्म ॥ ५ ॥

चतुर्णामृत्विजामेकैकस्य त्रयस्त्रयः सहकारिणो होत्रका नामोच्यन्ते । यथा—

| | | | | | |
|---|-------------|----------------|--------------|-----------------|--------------|
| १ | होता | अध्वर्युः | उद्गाता | ब्रह्मा | इति प्रथमाः |
| २ | प्रशास्ता | प्रतिप्रस्थाता | प्रस्तोता | ब्राह्मणाच्छंसी | इत्यर्धिनः |
| ३ | अच्छावाकः | नेष्टा | प्रतिहर्ता | अग्निध्रः | इति तृतीयिनः |
| ४ | प्रावस्तोता | उन्नेता | सुब्रह्मण्यः | पोता | इति पादिनः |

(६७)

तदित्थमृत्विजः षोडशधा । प्रशास्तैवायं मैत्रावरुणः ॥ प्रावस्तोतैव प्रावस्तुत् । अग्निध्रं
 एवायमग्नीध्रः, आग्नीध्रः, अग्नीदिति चाख्यायते ॥ यजमानः । १ । यजमानपत्नी । २ ।
 गृहपतिः । ३ । सदस्यः । ४ । आचार्यः । ५ । सोमप्रवाकः । ६ । पुरोधाः । ७ ।
 दशचान्ये चमसाध्वर्यवः इति सप्तदशैतेऽनृत्विजः पुरुषाः । एषां कस्यचिद् ऋत्विक्-
 त्वव्यपदेश आहार्यारोपाद् गौणः । ब्रह्मायं द्रष्टा सदस्यस्तूपद्रष्टा कर्मणां भवति ॥
 द्विविधा देवा इष्यन्ते । ईडेन्या अन्ये सर्पयेण्या अन्ये । अग्निः, वायुः, आदित्यः,
 चन्द्रमा इति चतुष्टयानुबान्धनस्त्रयस्त्रिंशद्देवा ईडेन्याः ॥ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचा-
 नास्त एवामी ऋत्विजोऽनृत्विजो वा यज्ञसंवद्धाः सर्पयेण्यास्त्रयस्त्रिंशत् ॥ आहुति-
 भिर्दिव्या देवा इष्यन्ते दक्षिणाभिर्मनुष्यदेवाः ॥

(३) हविष्पंक्तिः

आज्यंधानाः, करम्भः, परिवापः, अपूपः, पुरोडाशः, पयस्येति । एष वै यज्ञो
 हविष्पंक्तिः ॥ ऐ० ८ ॥

(४) सोमविशेषाः

(आक्षिजन) (अजोन)

हरिः पवित्रं पवमानपावकौ शुचिः समुद्राऽरुषबध्रवोऽरुणः ॥

विचक्षणश्चेति दश प्रधानतः श्रुतौ प्रसिध्यन्ति च सोमजातयः ॥ १ ॥

अद्भ्योऽशवः प्रजायन्ते ततः सोमः प्रजायते ॥

इति ऋक्संहिताभाष्ये धामारे दर्शिता श्रुतिः ॥ २ ॥ (६।५।२)

| १ महान् हरिः वृषाहरिः १५ | २ पवित्रम् २२ | ३ पवमानः ३० | ४ पावकः १ | ५ शुचिः १ |
|--------------------------------|---------------------|-------------------|-----------------|-----------------|
| ६।२।४ | ६।२।५ | ६।३।२ | ६।२४।६—७ | ६।२४।६—७ |
| ६।२।६ | ६।४।६ | ६।४।१ | | |
| ६।४।६ | ६।६।३ | ६।४।६ | | |
| ६।५।४ | ६।१२।५ | ६।५।१—११ | | |
| ६।५।६ | ६।१६।३ | ६।६।६ | | |
| ६।८।६ | ६।१६।४ | ६।११।१ | | |
| ६।६।३ | ६।१६।७ | ६।११।६ | | |
| ६।१६।३ | ६।१७।३ | ६।१२।६ | | |
| ६।२७।६ | ६।१७।४ | ६।१३।२ | | |
| ६।३२।२ | ६।१८।१ | ६।१३।६ | | |
| ६।३३।४ | ६।२०।७ | ६।१६।६ | | |
| ६।३४।४ | ६।२४।५ | ६।२१।४ | | |
| ६।३७।२ | ६।२७।१ | ६।२३।३ | | |

(६८)

| हरिः | पवित्रम् | पवमानः | | |
|-------------------|-----------------|-----------------|-----------------|---------------------|
| ६।३८।६। | ६।२७।२ | ६।२४।१ | | |
| ६।४२।१ | ६।२८।२ | ६।२४।३ | | |
| ० | ६।३०।१ | ६।२५।२ | | |
| ० | ६।३६।१ | ६।२६।३ | | |
| ० | ६।३७।१ | ६।२७।४ | | |
| ० | ६।३७।२ | ६।२७।५ | | |
| ० | ६।३६।३ | ६।२८।५ | | |
| ० | ६।४२।४ | ६।३०।४ | | |
| ० | ६।४३।५ | ६।३१।१ | | |
| ० | | ६।३५।१ | | |
| ० | | ६।३६।३ | | |
| ० | | ६।३७।३ | | |
| ० | | ६।३७।४ | | |
| ० | | ६।४०।४ | | |
| ० | | ६।४१।३ | | |
| ० | | ६।४३।४ | | |
| | | (अजोन) | | |
| ६ समुद्रः ३ | ७ अरुणः २ | ८ वज्रः २ | ९ अरुणः २ | १० विचक्षणः ३ |
| ६।२।५ | ६।८।६ | ६।११।४ | ६।११।४ | ६।१२।४ |
| ६।१२।६ | ६।२५।५ | ६।३३।२ | ६।४०।२ | ६।३७।२ |
| ६।२६।३ | | | | ६।३६।३ |

(५) सोमचतुष्टयम्

सोमश्चतुर्धा विज्ञेयो राजा वाजो ग्रहो हविः ॥

राजसूये वाजपेये ग्रहयागे हविः क्रतौ ॥ १ ॥

राजा

ओषधिभिरिष्टयः प्राक् सौमिकाः । ग्रहैः सौम्योऽध्वरो ग्रहसुत्या यागः । वाजेन वाजपेयसवयागः । राज्ञा राजसूयः सवयागः । धर्मपालो राजा । धर्मं विधरणं प्राणलक्षणम् । ध्रुवं धर्मं धरुणमिति धर्माणि । अष्टविधायां पृथिव्यां तारतम्येन काठिन्यापादकं धर्मं ध्रुवम् । अप्सु धर्मम् । तेजोवाय्वाकाशेषु तारतम्येन धरुणम् । त एतेऽग्नौ सूयमाना राजानः सोमा द्रष्टव्याः । एषामेव सोमानां तार-

(६६)

तम्यान्निविडानि तरलानि विरलानि च भूतानि दृश्यन्ते । अद्रौ हि सोमः । अश्मा हि सोमरूपम् ॥ १ ॥

(वाजः)

समाने त्वस्मिन् विधरणधर्मे वैशेष्यापादको वाजः । उत्साहो वाजः । ब्रीहिशालियवगोधूमतिलादीनां रूपाणि समानेऽपि ध्रुवधर्मे वाजाद् भिद्यन्ते । घृततैलवसासुरादयः समानेऽपि धर्त्रे यतो भिद्यन्ते स वाजः । आसञ्जनमन्नं वाजः । रसवीर्य्यविपाकादयो वस्तुधर्म्मा वाजाः ॥ २ ॥ वाग्धि वाजस्य प्रसवः । सा वै वाक् सृष्टा चतुर्धाव्यभवत् । या पृथिव्यां साग्नौ सा रथन्तरे ॥ १ ॥ यान्तरिक्षे सा वाते सा वामदेव्ये ॥ २ ॥ या दिवि सा बृहति सा स्तनयित्रौ । या बृहद्रथन्तरयोः—यज्ञादेनं तथा गच्छति । अथ पशुषु तथा ऋते यज्ञम् ॥ मै० सं० १ । ११ । ५ ॥

ग्रहः

अथ ग्रहाः सोमपात्राणि । ग्रहेषु सोमानि गृह्यन्ते । ग्रहाश्चत्वारिंशदेवेदानीं यावन्महर्षिभिर्दृष्टाः । बहवस्त्वन्येपि संभाव्यन्ते ॥ ३ ॥

हविः

हवींष्योषधयः । सोमेन गृहीता अग्निविशेषा ओषधयः । पशवस्तेऽग्निविशेषा अग्नौ हूयमाना अग्नयो भवन्ति ॥ सौम्या हि तेऽग्नय ओषधिस्थाः । वनस्पतिषु त्वग्नयः सौराः इति भेदः ॥

(६) सोमांशवः

अथ सोमांशवो दशोच्यन्ते ताण्ड्ये—^१प्रत्नो^२ऽशुर्यमभिषुण्वन्ति । तृप्तो^३ऽशुरापः ।
^४रसो^५ऽशुर्ब्रीहिः ॥ ^६वृषो^७ऽशुर्यवः । ^८शुक्रो^९ऽशुः पयः । ^{१०}जीवो^{११}ऽशुः पशुः । ^{१२}अमृतो^{१३}ऽशुर्हिरण्यम् ।
^{१४}ऋगंशुः । ^{१५}यजुरंशुः । ^{१६}सामांशुः । इति । यदा वा एते सर्वे संगच्छन्ते तर्हि स सोमः स सुतः ॥

(७) ग्रहाः

सोमस्य ग्रहाश्चत्वारिंशद् भवन्ति ।

^१उपांशुसवनः । ^२उपांशुः । ^३अन्तर्यामः—इति त्रयः । ^४ऐन्द्रवायवः । ^५मैत्रावरुणः ।

६
आश्विनः—इति त्रयः । शुक्रः । मन्थीति द्वौ । आग्रयणः । उक्थः । ध्रुवः । इति त्रयः ।
१२ १३ २५ २६ २७
पूतभृत् । आधवनीयः—इति द्वौ । ऋतुग्रहा द्वादश । ऐन्द्राग्नः । वैश्वदेवः—इति द्वौ ॥
इति सप्तविंशतिः प्रातःसवनीयाः स्युः ॥

३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५
मरुत्वतीयास्त्रयः । माहेन्द्र एकः । शुक्रामन्थिनौ । आग्रयणोक्थ्यौ । चेति
माध्यन्दिनीया प्रष्टौ ॥

३६ ३७ ३८ ३९ ४०
आदित्यः सावित्रः इति द्वौ । वैश्वदेवः । पालीवतः । हारियोजनः । इति पञ्च
सायं सवनीयाः । इत्थं चत्वारिंशदग्निष्टोमीयाः ग्रहाः स्युः ॥

४१ ४२ ४३ ४४
अंशुः । अदाभ्यः इति द्वौ । दधिग्रहः । षोडशी—इति द्वौ । तेऽमी चत्वारोऽत्यग्नि-
ष्टोमीयाः । इत्थं चतुश्चत्वारिंशत् । शुक्रामन्थिनोराग्रयणोक्थयोः पुनरुक्तत्वाच्चत्वारिं-
शदिति निष्कर्षः । तथा च श्रूयते—

“षट् त्रिंशश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांसि च दधत आद्वादशम् ॥ यज्ञं विमाय
कवयो मनीषा ऋक्सामाभ्यां प्ररथं वर्तयन्ति ॥ १ ॥” ऋ० सं० ।

धाराः । सवाः । पवित्रम् । अमृतं चेति चतुर्धैते ग्रहाः सर्वे भाव्याः ॥

(८) सृष्टिबन्धवः

१ २ ३ ४ ५ ६
रेतोधाः । रेतः । तेजः । योनिः । गर्भः । ऋतुः—इत्येताः षट् सृष्टिबन्धवः । रेतोधा
रेतो योनौ सिञ्चति । तेजस्तत्र वीर्यं दधाति योनिनिहितं रेतस्तत्र ऋतौ आर्तवेन गृहीतो
गर्भः संपद्यते । रेतोधाः सोमः । रेतः सोमः रेतोधसो रेतः सेकप्रयोजकमात्रावदग्नि-
रेवायमृतुः । दोहदश्च ऋतुः ॥ दोहदपुष्टो गर्भः प्रजायते ॥ एषां षण्णां धर्माणां मिथोऽनु-
कूलबन्धनं संसृष्टिः सा सृष्टिः ॥

(९) रेतसः सृष्टिः

अथातो रेतसः सृष्टिः । प्रजापते रेतो देवाः । देवानां वर्षम् वर्षस्यौषधयः । ओष-
धीनामन्नम् । अन्नस्य रेतः । रेतसः प्रजाः । प्रजानां हृदयम् । हृदयस्य मनः । मनसो
वाक् । वाचः कर्म । तदिदं कर्मकृतमयं पुरुषो ब्रह्मणो लोकः ॥ स इरामयः । तस्मा-
द्विररमयः (ऐ० आ० १ । १ ।) ॥ एष एव कर्मात्मा पुरुषस्तांस्तान् लोकाननु-
संचरति ॥ १ ॥

(७१)

(१०) सहचराणि

नाभानेदिष्टं^१ । बालखिल्याः^२ । वृषाकपिः^३ । एवया मरुत्^४ । इति सहचराणि चत्वारि ।
तान्येतानि—रेतः^१, प्राणाः^२, आत्मा^३, प्रतिष्ठा^४—इत्येतानि विद्यात् ॥ ऐ ० ॥ वाक्
प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं मन आत्मेति प्राणाः ॥ ॐ ॥ यत्र वृषा योषायां रेतः सिञ्चति तत्रै-
तस्मिन् पञ्चभूतमये रेतसि भृगवोऽङ्गिरसश्च प्राणाः अधितिष्ठन्तस्तान्येतानि पञ्च-
भूतानि सह सञ्चारयन्ति । अथ वागादिपञ्चदेवतालम्बनेन्द्रश्चायमात्मा प्राणानामन्त-
रतस्तिष्ठन् प्राणान् समिन्धे । आत्मनि चेदं ब्रह्म प्रतिष्ठा प्रतिष्ठापयति तेनेदं रेतो
न श्च्योतति न पूयते । तथा चैषां चतुर्णां सहचाराद् योनौ प्रतितिष्ठदिदं रेतः प्राणैः
प्राणेन चात्मना भाव्यमानः पुरुषरूपेण परिणमते विजायते । तेषामेषां चतुर्णां सह-
चराणां याज्ञिकान्येतानि नामधेयानि क्लृप्तानि ॥

(११) सप्त पोषाः

अग्निः साहस्रमपुष्यत् । पृथिवी औषधिभिर्वनस्पतिभिरपुष्यत् । वायुर्मरीचिभिः ।
अन्तरिक्षं वयोभिः । आदित्यो रश्मिभिः । द्यौर्नक्षत्रैः । चन्द्रमा अहोरात्रैर्द्विमासैर्मालै-
र्ऋतुभिः संवत्सरेणापुष्यत् । इत्यमी सप्त पोषाः ॥ तै० ब्रा० २ । ३ । ३ ॥

इति दशमः पाठः ॥ १० ॥

(१) दीक्षा दीक्षिताः

तत्कर्मयोग्यस्य तत्कर्मविशेषेऽधिकारनियुक्तिर्दीक्षा ।

- १ पृथिवी दीक्षा । तयाऽग्निर्दीक्षितः ॥
- २ अन्तरिक्षं दीक्षा । तया वायुर्दीक्षितः ॥
- ३ द्यौर्दीक्षा । तयाऽऽदित्यो दीक्षितः ॥
- ४ दिशो दीक्षा । तया चन्द्रमा दीक्षितः ॥ १ ॥
- ५ आपो दीक्षा । तया वरुणो राजा दीक्षितः ॥
- ६ औषधयो दीक्षा । तया सोमो दीक्षितः ॥
- ७ वाग् दीक्षा । तया प्राणो दीक्षितः ॥

(२) पुरोहितपुरोधातारः

अग्निः पुरोहितः—पृथिवी पुरोधाता । वायुः पुरोहितः । अन्तरिक्षं पुरोधाता । आदि-
त्यः पुरोहितः—द्यौः पुरोधाता । स पुरोहितो य एवं वेद । स तिरोहितो य एवं न वेद ॥

३ सवित्री सावितारः

- १ मनः सविता—वाक् सवित्री ।
- २ प्राणः सविता—अन्नं सवित्री ।
- ३ वेदाः सविता—छंदांसि सवित्री ।
- ४ यज्ञः सविता—दक्षिणा सवित्री ।
- ५ अग्निः सविता—पृथिवी सवित्री ।
- ६ वायुः सविता—अंतरिक्षं सवित्री ।
- ७ आदित्यः सविता—द्यौः सवित्री ।
- ८ चंद्रमाः सविता—नक्षत्राणि सवित्री ।
- ९ अहरेव सविता—रात्रिः सवित्री ।
- १० उष्णं सविता—शीतं सवित्री ।
- ११ अभ्रं सविता—वर्षं सवित्री ।
- १२ विद्युत् सविता—स्तनयिन्नुः सवित्री ।

इति भृग्वङ्गिरश्चक्षुषं द्वादशमिथुनां चतुर्विंशतियोनिमिमां सवित्रीं गायत्रीं ग्ला-
वाय मैत्रेयाय भगवान् मौद्गल्य ऋषिः प्रोवाच । यत्रैव सविता तत्र सावित्री यत्रैव वा
सावित्री तत्र सविता नूनमविनाभावेनोपतिष्ठते । इति सत्यं विद्यात् ॥

स सविता सावित्र्या ब्राह्मणं सृष्ट्वा तत्र सावित्रीं पर्यदधात् ॥ तेनैवं विदुषा
ब्राह्मणेन ब्रह्माभिपन्नं प्रसितं परामृष्टम् । ब्रह्मणाऽऽकाशम् । आकाशेन वायुः । वायुना
ज्योतिः । ज्योतिषा आपः । अद्भिर्भूमिः । भूम्या अन्नम् । अन्नेन प्राणः । प्राणेन
मनः । मनसा वाक् । वाचा वेदाः । वेदैर्यज्ञोऽभिपन्नो प्रसितः परामृष्टः । तानि वा
एतानि द्वादश महाभूतानि एवंविधिप्रतिष्ठितानि ॥ तेषां यज्ञ एव पराद्धयः ॥
गो० १ । ३८ ॥

सोऽयं यज्ञो वेदेषु प्रतिष्ठितः । वेदा वाचि । वाङ् मनसि मनः । प्राणे । प्राणे-
ऽन्ने । अन्नं भूमौ । भूमिरप्सु । आपो ज्योतिषि । ज्योतिर्वायौ । वायुराकाशे । आकाशं
ब्रह्मणि । ब्रह्म ब्राह्मणे ब्रह्मविदि प्रतिष्ठितम् । यो ह वा ब्राह्मणो ब्रह्मवित् स
पुण्या कीर्तिं लभते सुरभीन् गन्धान् । सोऽपहतपाप्मा आनन्त्यश्रियमश्नुते ॥

(४) बार्हस्पत्याः स्तोमभागाः

रश्मिः क्षयं प्रेतिर्धर्मं जिन्वति । अन्वतिः सन्धिः प्रतिधिः—दिवमन्तरिक्षं पृथ्वीं
जिन्वति । विष्टम्भो वृष्टिम् । प्राचोऽहरन्वा रात्रिम् । उशिक् प्रकेतः सुदीतिरोज इति
वसुरुद्रादित्यपितृन् । तन्तुः प्रजां रेवदोषधीः, पृतनाषाट् पशून्, अभिजिदिन्द्रं

(७३)

जिन्वति । अधिपतिधरुणौ प्राणापानौ । संसर्पवयोधसौ । चक्षुः श्रोत्रे । त्रिवृत्—
सवृत्—प्रवृदनुवृत्तो, निरोहसंरोहप्ररोहानुरोहाः, वसुक्र—वस्पष्टिवेषश्रियः, आक्रम—
संक्रमेत्क्रमोत्क्रान्तयश्चेति ॥ त एते बार्हस्पत्याः स्तोमभागास्त्रयस्त्रिंशत् । तत्राग्निष्टोमे
द्वादश उक्थे पञ्चदश षोडशिनि षोडश । वाजपेये सप्तदश ॥ अतिरात्रे एकोनत्रिंशत् ॥
आप्तोर्य्याग्नि त्रयस्त्रिंशत् ॥

(५) सतां सत्रस्य सद्भावः

यद् यत्र सीदति तस्य तत् सत् । यो वै सत्रस्य सद्देद स सद्भवति । वामदेव्यं
वै साम्नां सत् । अग्निर्देवतानाम् । विराट् छन्दसाम् । त्रयस्त्रिंशः स्तोमानाम् ।
तान्येव तदेकधा संभृत्योत्तिष्ठन्ति ॥ तां० ४ । ८ । १० ॥ सति यत् सीदति प्रति-
तिष्ठति तत् सत्यम् ॥

(६) द्वादशमहाभूतानि (गो० २ । ३८)

ब्रह्म । आकाशम् । वायुः । ज्योतिः । आपः । भूमिः । अन्नम् । प्राणः । मनः ।
वाक् । वेदाः । यज्ञः । इत्येतानि द्वादशमहाभूतानि ॥ यज्ञो वेदेषु ते वाचि, सा मनसि,
तत् प्राणे सोऽन्ने तद् भूमौ भूमिरप्सु । आपो ज्योतिषि । ज्योतिर्वायौ । वायुराकाशे ।
आकाशो ब्रह्मणि । ब्रह्म तु ब्राह्मणे ब्रह्मविदि प्रतितिष्ठति । नानानाम्नां नदीनां समुद्र-
मभिपद्यमानानां छिद्यन्ते नामरूपाणि समुद्र इत्येवाख्यायते । एवं सर्वेषां वेदानां यज्ञ-
मभिपद्यमानानां छिद्यन्ते नामरूपाणि यज्ञ इत्येवाचक्षते ॥ (गो० २ । ६) ॥

(७) षट् प्रतिष्ठाः

द्यौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता । अन्तरिक्षं पृथिव्याम् । पृथिव्यप्सु । आपः सत्ये । सत्यं
ब्रह्मणि । ब्रह्म तपसि । इत्येताः षट् प्रतिष्ठाः प्रतितिष्ठन्तीरिदं सर्वमनुप्रतितिष्ठति ॥ ऐ०
११ ॥ गो० ३० ३ । २ ॥

(८) अक्षिताक्षय्यप्रतिष्ठाः

१ लोकः ॥ १ ॥ तपः । २ तेजः ॥ २ ॥ समुद्रः । ३ आपः ॥ ३ ॥ पृथिवी । ४ अग्निः ॥ ४ ॥
५ अन्तरिक्षम् । ६ वायुः ॥ ५ ॥ द्यौः । ७ आदित्यः ॥ ६ ॥ चन्द्रमा । ८ नक्षत्राणि ॥ ७ ॥
९ संवत्सरः । १० ऋतवः । ११ मासाः । १२ अर्द्धमासाः । १३ अहोरात्रे पौर्णमास्यष्टकामावस्याः ॥ ८ ॥
१४ राट् श्रीः । १५ ओजः सहोबलं भ्राजः ॥ ९ ॥ देवास्त्रयस्त्रिंशः ॥ १० ॥ इत्यक्षिताक्षय्यानि

द्वाविंशतिः । एषामुत्तरमुत्तरं पूर्वस्मिन्नाश्रितं विद्यात् । पूर्वं पूर्वं चोत्तरेषां प्रतिष्ठा भवति ॥ तै० ब्रा० ३ । ११ । २ ॥

(६) द्वादश जयाः

आकृतमाकृतिर्द्वौ । चित्तं चित्तिर्द्वौ । आधीतमाधीतिर्द्वौ । विज्ञातं विज्ञातिर्द्वौ । भगः क्रतुर्द्वौ । दर्शः पूर्णमासो द्वौ । इत्येते द्वादश जयाः स्युः ॥ यज्ञदक्षिणे, मनोवाचे, प्रजापशवे, ऋक्सामे, प्रजापतियज्ञौ, दर्शपूर्णमासे इत्येतेषां निदानानि ॥

(१०) ब्रह्मसत्रम्

ऋतं—सत्यम्—ऋतं—सत्यम्—ऋतम्—इति पातकं ब्रह्मसत्रम् । अहृदयमशरीर-
मृतम् । सहृदयं सशरीरं सत्यम् । यदिदं किञ्चिद्दृश्यते तदखिलं परस्परेणानुषक्त-
मनन्तरितमेकं पूर्णं भवति । तदसीमं तदशरीरं तद्दृढदयं तस्माद् ऋतं नाम तच्चेदमृतं
ब्रह्म सत्यैरेभिरनन्तैः सूर्यचन्द्रपृथिवीप्रभृतिभिर्मूर्तब्रह्मभिरारब्धं विज्ञायते । तानि
च सत्यानि पुनरनन्तैर्ऋतैरेव तैस्तैर्ब्रह्मभिः कृतरूपाणि संभवन्ति ॥ तानि पुनः
सत्यानि परमाणूनि येन यावता ब्रह्मणा कृतशरीरं भवति तद्वतमनुभावयामः ॥ ऋते
सत्यं सीदति सत्ये चापामृतं सीदति । तदिदं ब्रह्मणः सत्रम् । तदित्थमन्तरतो योऽन्त-
स्तत् परमं स्थानं तत्रास्तीति परमेष्ठीदमृतम् । बहिर्द्वौ योऽन्तस्तत् परमं स्थानं तत्रास्तीति
परमेष्ठीदमृतम् ॥ उभयत एवेदमृताभ्यां परिगृहीतं सर्वं सत्यम् ॥ तथा च श्रूयते—

ऋतमेव परमेष्ठि ऋतं नान्येति किञ्चन ॥

ऋते समुद्र आहितः ऋते भूमिरियं श्रिता ॥ इति ॥

ऋतेन च गर्भितं सत्यम् । अतश्चेदं यत् सत्यं यद्वत् तत्सत्यम् । सर्वं सत्यं सर्व-
मृतम् ॥ यन्न ऋतं तदनृतम् ॥ ऋतेन सर्वं पूर्णं । तथा च श्रूयते—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ॥

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १ ॥

इत्येकादशः पाठः ॥ ११ ॥

जयपुरनरपतिमाधवसरस्वतीभवनभावनाध्यक्षः ॥

श्रीमधुसूदनविबुधो दैवीं निविदं व्यधादेताम् ॥ १ ॥

वेदार्थप्रतिपित्सूनां बालानामुपकारिणी ॥

सैषा दैवी निविद्वयात् तुष्टयै वेदानुभाविनाम् ॥ २ ॥

देवानामिदवो महत् तदावृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमृतये ॥ १ ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीता ब्रह्मविज्ञानान्तर्गता

दैवोनिवित् संपूर्णा ॥

॥ इति ॥

शुद्धिपत्रम्

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|--------|---------|-----------------|----------------|
| २ | ३ | वीर्यामिन्द्रः | वीर्यामिन्द्रः |
| २ | ९ | तानूनप्र | तानूनप्र |
| ३ | १ | अग्नीसोमौ | अग्नीषोमौ |
| ३ | १२ | विश्वेदेवा | विश्वेदेवाः |
| ५ | २ | स्तुतयो । देवाः | स्तुतयो देवाः |
| ५ | २१ | मनुष्यः | मनुष्याः |
| ६ | ६ | ऊर्जानपात् | ऊर्जोनपात् |
| ७ | ६ | शिपिविष्टः | शिपिविष्टः |
| ८ | २० | भेदः | भेदाः |
| ९ | १८ | वीरभद्रो | वीरभद्रो |
| १० | ४ | संस्त्राव | संस्त्रव |
| १० | २७ | कार्येषु | कार्येषु |
| १५ | ३ | अन्यान्य | अन्योन्य |
| १५ | ४ | आकाशमया | आकाशमयो |
| १५ | १४ | ऋषया | ऋषयो |
| १५ | १५ | शोणा | शोण |
| १५ | १८ | वा | बहवो |
| १६ | २६ | विश्वे | विश्वै |
| १७ | १४ | ९ | १० |
| १७ | १४ | ६ | ७ |
| १८ | २ | सामान्याद् | सामान्याद् |
| १८ | ४ | परिशिष्येण | परिशिष्येण |
| १९ | ९ | बहिणी | बर्हिणी |
| २४ | ४ | वेते | त्वेते |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|--------|---------|------------------|------------------|
| ६४ | १४ | पूण | पूर्ण |
| ६५ | ९ | वाषिको | वार्षिको |
| ६५ | २७ | त्रीणि | तृणि |
| ६७ | ८ | सपर्येण्या | सपर्येण्या |
| ६९ | १२ | सोमानि गृह्यन्ते | सोमा निगृह्यन्ते |
| ७० | ५ | प्रष्टौ | अष्टौ |
| ७२ | १ | सवित्री | सावित्री |
| ७२ | १ | सावितारः | सवितारः |
| ७२ | २८ | अन्वतिः | अन्वितिः |
| ७२ | २९ | वृष्टिं | वृष्टिं |
| ७३ | ३ | क्रमेत्क्रमः | क्रमोत्क्रमः |
| ७४ | १० | तद् हृदयं | तद्धृदयं |
| ७४ | १९ | अतश्चेदं | आतश्चेदं |
| ७४ | २७ | भयात् | भूयात् |